३-३.

विषयानुक्रमणिका

गद्य-विविधा

पाठों का सारांश

१. शिरीष के फूल	१
२. गरुड़ध्वज	२
३. चित्रकूट की छाया में	४
४. चित्राङ्कन	६
५. आजाद की माताजी	७
६. बाघ से भिड़न्त	९
७. क्या सूझी एलेक्शन की	१०
८. स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्र्य का प्रश्न	१२
९. सरजू भैया	१४
१०. वन्दी पिता का पत्र	१५
११. पहला रिपोर्टर	१७
१२. तूफान के विजेता	१८
१३. काठमाण्डू दर्शन	२०
१४. क्यों रो रहे हो ?	२२

प्रमुख स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

१. एक बार मुझे······उगा सकता था।	२३
२. यमनराज के······सब पर प्रभाव डाला।	२४
३. वसुमित्र ने यमन······तत्पर हो गया।	२४
४. कर्वी से चित्रकूट······हो सकता था।	२५
५. यह कैसा चित्र······दरबार का दृश्य है।	२५
६. तुझे कुछ खींचना······दिया जायेगा।	२६

७. यह कैसा चित्र······वज्र टूट पड़ा है। २६
८. तुझे कुछ खींचना······दिया जायेगा। २७
९. यह कैसा चित्र······कलम तोड़ दी है। २७
१०. तुझे कुछ खींचना······दिया जायेगा। २८
११. एक तो दिन भर······हमारी रक्षा करो। २८
१२. वेदकालीन······परतन्त्र ही रही। २९
१३. जीवन में विकास······आदर न दे सका। २९
१४. लीलामय की महानटी······समर्थ न होता। ३०
१५. नेपाल-शैव, शाक्त······बाँधे हुए हैं। ३०
१६. युद्ध की संघर्षमयी······सोचता ही रह जाता। ३१

नाट्य युग

नाटकों का सारांश या कथावस्तु

१. जानकीमंगल २६
२. सत्यहरिश्चन्द्र २७
३. यम का न्याय २९
४. अन्धेर नगरी ३१
५. चन्द्रावली ३३
६. सतीप्रताप ३४

संस्कृत नाटक और नाटककार

नाटकों का सारांश अथवा कथावस्तु

१. स्वप्नवासवदत्त ३६
२. अभिज्ञानशाकुन्तल ३९
३. मृच्छकटिक ४३
४. रत्नावली ४५
५. वेणीसंहार ४८
६. उत्तररामचरित ५०
७. मुद्राराक्षस ५४
८. कर्पूरमञ्जरी ५७
९. प्रसन्नराघव ५९

सुन्दरकाण्ड : सर्ग ७ से ९ तक

संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद ६२–७६

हिन्दी व्याकरण एवं मुहावरे

हिन्दी-व्याकरण १–७
मुहावरे, अर्थ तथा वाक्य में प्रयोग ८–१२

हिन्दी निबन्ध

१. हमारे प्रिय कवि : गोस्वामी तुलसीदास १३
२. हमारे प्रिय लेखक : आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी १६
३. हमारे प्रिय राष्ट्रकवि : मैथिलीशरण गुप्त (अथवा) हमारे प्रिय प्रतिनिधि कवि : मैथिलीशरण गुप्त १८
४. हमारा प्रिय काव्य : सूरसागर २०
५. साहित्य और समाज (अथवा) साहित्य समाज का दर्पण है २३
६. भारतीय संस्कृति २५
७. विद्यार्थी-जीवन में अनुशासन का महत्त्व २७
८. हमारा प्रिय नगर : वाराणसी ३०
९. गंगा का महत्त्व एवं गंगा-प्रदूषण ३२
१०. पुस्तकालय की उपयोगिता ३४
११. देश-प्रेम (अथवा) जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ३५
१२. देशाटन ३७
१३. सत्संगति (अथवा) 'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई' ३९
१४. विजयादशमी ४१

॥ श्रीः ॥

सफलता-सोपान

गद्य-विविधा

पाठों का सारांश

(१) शिरीष के फूल

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित निबन्धों में 'शिरीष के फूल' नामक निबन्ध का विशेष महत्त्व है। यह एक व्यक्तिनिष्ठ भावात्मक निबन्ध है।

विद्वान् लेखक का कथन है कि मैं जहाँ बैठकर यह लेख लिख रहा हूँ; वहाँ चारों तरफ शिरीष के वृक्ष सुशोभित हैं और ग्रीष्म के ऋतु में भी ऊपर से नीचे तक फूलों से सजे हुए हैं।

फूल तो अनेक हैं और समयानुसार सभी फूलते रहते हैं, परन्तु शिरीष की उन पुष्पों से विशेषताएँ हैं। यह वसन्त के आगमन से लेकर आषाढ़ तक खूब लहराता है। इसके पुष्पों को देखकर मन आह्लाद से भर जाता है।

शिरीष के वृक्ष ऊँचाई तक जाते हैं और छायादार होते हैं। इसके पुष्प अति सुकोमल होते हैं। संस्कृत-साहित्य में इसके पुष्पों की मृदुता का विशद वर्णन है। महाकवि कालिदास का कथन है कि शिरीष का पुष्प इतना कोमल होता है कि वह केवल भ्रमरों के पदों का कोमल दबाव तो सहन कर सकता है, परन्तु पक्षियों के पदों का दबाव बिलकुल नहीं—

'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्त्रिणाम्'।

शिरीष के पुष्प कोमल अवश्य हैं, परन्तु इसके फल बहुत कठोर होते हैं। वे परस्पर लड़खड़ाते रहते हैं और अन्त में नीचे पृथ्वी पर गिर जाते हैं—

'धरा को प्रमान यही तुलसी।
जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना'॥

वास्तव में यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख, वह एक समान रहता है, वह हार नहीं मानता। वह 'न ऊधो का लेना; न माधो

का देना' इसी लोकोक्ति को चरितार्थ करता रहता है। ग्रीष्म काल में जब पृथ्वी और आसमान दोनों तप्त रहते हैं, तब भी, पता नहीं, यह कहाँ से 'रस' पाता है और मस्ती के साथ झूमता रहता है ?

इस सम्बन्ध में वनस्पतिशास्त्रियों का कथन है कि यह पवन से 'रस' प्राप्त करता है। जो भी हो, परन्तु यह शिरीष सहृदय कवियों को अपने सौन्दर्य से प्रभावित किया है और कर रहा है। प्राचीन महाकवियों में कालिदास इससे विशेष प्रभावित थे। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नाटक में शिरीष पुष्प का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। महाराजा दुष्यन्त ने एक बार शकुन्तला का चित्र बनाया, परन्तु उस चित्र को बार-बार देखकर भी उनके मन में ऐसी बात उठती थी कि इस चित्र में कहीं कुछ त्रुटि रह गई है, इस चित्र को सजाने में कोई चीज छूट गई है। वे बहुत देर तक चिन्तित रहे, बाद में उनकी समझ में आया कि शकुन्तला के कानों में शिरीष पुष्प देना भूल गये हैं—

'कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे, शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे' ॥

शिरीष का पुष्प अपने गुणों से लोकमंगल की कामना करते हुए मानो उन्हें शिक्षा दे रहा है, उन्हें संकेत कर रहा है कि मेरी ओर देखो—मैं किस प्रकार सुख-दुःख में समान रूप से स्थित हूँ।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली आदि समस्त दृष्टिकोणों से प्रशस्त निबन्ध है।

(२) गरुड़ध्वज

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय द्वारा लिखित भारतीय ऐतिहासिक गाथाओं में 'गरुड़ध्वज' नामक गाथा का विशेष महत्त्व है। यह भारतीय इतिहास की एक यशस्वी गाथा है, जिसके भीतर विद्वान् लेखक ने तक्षशिला के यूनानी यवन-राजा अन्तलिखित के एक सम्भ्रान्त कुल के होनहार बालक हेलिओदोर के प्रशंसनीय जीवन का चित्र अंकित किया है, जिसने राजदूत बनकर तक्षशिला के यवनराज्य एवं मगध के शुंगसम्राट् के बीच मैत्री का बीज अंकुरित किया, जो आज भी विदिशा में गरुड़ध्वज के प्रतीक के रूप में वर्तमान है।

हेलियोदोर के पिता यवनराज अन्तलिखित के सेनापति थे और माता मागन्धी परम भागवत थी। बाल्यावस्था में माता के ही सम्पर्क में रहकर

यह बालक भगवद्भक्त बन गया। भगवान् की कथाएँ सुनकर उसमें निमग्न हो जाता था। इसे विश्वबन्धुत्व की भावना बड़ी ही प्रिय लगती थी—

'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः'॥

धीरे-धीरे यह बालक हेलियोदार युवावस्था को प्राप्त हुआ। यवनराज अन्तलिखित ने बल, वीर्य, गुण तथा बुद्धिसम्पन्न देखकर इसे अपने मंत्री-मण्डल में स्थान दिया। कार्यकुशलता के कारण अन्य मन्त्रियों की अपेक्षा यह यवनराज का विशेष कृपापात्र बन गया। राज्यकार्य सुचारु रूप से करता हुआ यह अवकाश के समय भगवद्भक्ति भी कर लेता था, इसकी कीर्ति देश-विदेश सर्वत्र फैलने लगी।

उस समय मगध के शुंगसम्राट् सुज्येष्ठ अपने बल-वैभव से बड़े सम्पन्न थे, तक्षशिला के यवनराज्य और मगधसाम्राज्य की सीमाओं में कुछ विवाद खड़ा हो गया। यवनों ने शुंग-सीमा पर कुछ मागध नागरिकों को अपमानित किया था, जिससे मगधसम्राट् ने क्रोधित होकर यवनराज को चेतावनी दी कि 'मगध से उलझना नहीं'।

यद्यपि यवन-सेनापतियों को युद्ध की सम्भावना से प्रसन्नता हुई, परन्तु मंत्री हेलिओदोर ने नीति से काम लेते हुए उन्हें शान्त किया और कहा कि 'मागधों से उलझना मूर्खता है, उनसे सन्धि करना चाहिए, न कि युद्ध'।

यवनराज अन्तलिखित ने मंत्री हेलिओदोर के प्रस्ताव का समर्थन किया और उसे ही सन्धिदूत बनाकर मगध भेजा।

हेलिओदोर बहुत ही दूरदर्शी एवं निपुण राजनीतिज्ञ था। अतः उसने मगध न जाकर विदिशा जाना ही उचित समझा, क्योंकि वहाँ का शासक वसुमित्र बहुत ही सौम्य एवं शान्त स्वभाव युक्त था। राजदूत के दरबार में पहुँचते ही उसने अपने मन्त्रियों को विसर्जित कर दिया और यवनदूत को आसन पर विराजमान होने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् सम्मानपूर्वक आगमन का कारण पूछा—'कहो यवनसचिव ! क्या है तुम्हारा दौत्य ?'

हेलिओदोर ने कहा—'देव ! मैं आया हूँ यवनराज की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर'।

वसुमित्र ने कहा—'इसके लिए तो मगध जाना ही युक्तिसंगत होगा'।

हेलिओदोर ने कहा—'देव ! सागर की उठती लहरों को सामने न ललकार कर पार्श्व में लेना अधिक श्रेयस्कर है'।

सन्धिदूत ने सीमा पर घटित घटना तथा मगधराज की चेतावनी की चर्चा करते हुए वहाँ न जाकर यहीं से उसका समाधान सन्धि-प्रस्ताव को युक्तिसंगत सिद्ध किया।

वसुमित्र ने कहा—'मुझे तुम्हारी बात मानने में कोई आपत्ति नहीं है। मैं तुम्हारे प्रस्ताव को स्वीकार करता हूँ। मुझे विश्वास है कि सम्राट् भी इसे स्वीकार करने में आपत्ति न करेंगे। मैं सम्राट् की सेवा में विशेष दूत भेजूंगा। यवनराज का यह प्रस्ताव बहुत ही सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण है। मेरा विचार है कि इस सम्बन्ध में स्मारकस्वरूप एक स्तम्भ निर्मित हो जाय'।

विदिशाराज की बातों से राजदूत हेलिओदोर को बड़ी ही प्रसन्नता हुई, क्योंकि उसी के प्रयत्न एवं निपुणता से विदिशा में एक स्तम्भ का निर्माण हुआ, जिस पर गरुड़ का चिह्न था—गरुड़ध्वज।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह भारतीय ऐतिहासिक गाथा भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टियों सें प्रशस्त है।

(३) चित्रकूट की छाया में

श्रीराहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित आत्मकथाओं में 'चित्रकूट की छाया में' एक प्रशस्त आत्मकथा है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने २७ वर्ष की अवस्था में अपने चित्रकूट-यात्रा के अनुभवों का वर्णन किया है।

आर्यसमाजी विचारधारा के कारण मैं किसी आर्यसमाजी के सम्पर्क में नहीं रहना चाहता था। अतः मैं कर्वी स्टेशन से वहाँ के प्रसिद्ध महन्त जयदेवदासजी के यहाँ पहुँचा, जो अभिमानशून्य बड़े ही सरल स्वभाव के आदर्श व्यक्ति थे। वे अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु विद्याव्यसनी अवश्य थे। यही कारण था कि वे एक संस्कृत पाठशाला खोलकर विद्वान् पं० गोविन्द-दास, पं० जगदीश त्रिपाठी तथा पं० शिवनारायण शुक्ल को सवैतनिक नियुक्त कर सुचारु रूप से उसका सञ्चालन करते थे।

महन्तजी की पाठशाला में अनेक विद्यार्थी अध्ययन करते थे। मैंने भी वहाँ अध्ययन की दीक्षा ली। वहाँ के विद्यार्थी तथा सन्त-महात्मा मुझे 'शास्त्री' कहकर पुकारते थे। मैं सभी से प्रेमपूर्वक मिलता, बातचीत करता तथा उनकी सहायता करता था।

एक दिन हरिनारायण नामक सन्त के शिर में जोर की पीड़ा हुई। उतने बड़े समूह में जब कोई भी व्यक्ति डॉक्टर को बुलाने के लिए नहीं गया, तब बाध्य होकर मुझे जाना पड़ा, जिसकी दवा से सन्त को आराम हुआ।

तत्पश्चात् मैं अपने एक सहयोगी के साथ भरतकूप देखने गया। जब मैं वहाँ से लौटकर आया, तब पता चला कि एक तपस्वी साधु पञ्चत्व को प्राप्त हो गया है, उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला कोई नहीं है। वहाँ के साधु-सन्तों के इस व्यवहार से मुझे उनके प्रति क्रोध भी हुआ और घृणा भी— 'त्याग और वैराग्य के ये ठीकेदार, भक्त और भगवान् के ये इश्तिहारी सेवक अपने एक साथी के शव को मठ के पीछे नदी पर ले जाकर फूंक आने पर भी तैयार नहीं थे'।

अन्त में मैंने दो-एक सहयोगियों के साथ उस शव के अन्तिम संस्कार की व्यवस्था की, जिससे उसकी आत्मा को शान्ति मिले।

मैंने अनेक बार कर्वी से चित्रकूट जाकर पर्वत की परिक्रमा की। आर्य-समाज के प्रभाव से इस परिक्रमा में मेरी भक्ति-भावना तो कम थी, प्रकृति के प्रति प्रेम होने के कारण उसकी रमणीयता देखने की भावना अवश्य थी। वहाँ के मन्दिरों-मठों को देखने से यही प्रतीत होता था कि यहाँ के पुजारी तथा महन्त या साधु-सन्तों के लिए धार्मिक परिप्रेक्ष्य में वही लोकोक्ति काम कर रही थी कि 'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और'।

वहाँ का जानकीकुण्ड देखने योग्य था। वहाँ की पथरीली भूमि, नदी की कल-कल ध्वनि, झुण्ड-की-झुण्ड मछलियाँ वहाँ की सुषमा में चार चाँद लगा रही थीं। यहाँ ऋषियों-मुनियों के भी आश्रम थे, जो पूर्व के तपस्वियों की भाँति सकलत्र तो नहीं थे, पर सपरिग्रह अवश्य थे। पहले के ऋषि-मुनि कन्द-मूल-फल आहारी तथा इंगुदी के तेल का प्रयोग करते थे, परन्तु ये तपस्वी अन्न के प्रयोग पर बल देते हुए चमेली तथा गुलाब-रोगन के तेलों का प्रयोग करते थे।

वहाँ सती अनसूयाजी का भी दर्शन किया। वहाँ पर्वत एवं जंगल भी दर्शनीय थे। वहाँ मधुमक्खियों की मधुछत्ता की अधिकता थी, जिनका मधुपान बन्दर तथा ऋक्ष करते थे, मधुहरा भी वहाँ से मधु निकालते थे। यात्री वहाँ उपले पर भोजन बनाते थे, जिसके धुएँ से उद्विग्न होकर मधु-मक्खियाँ यात्रियों को परेशान करती थीं।

चित्रकूट से दण्डकारण्य जाने का विचार मन में आया, परन्तु कठिन चढ़ाई के कारण वहाँ न जा सका।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह आत्मकथा भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टिकोणों से प्रशस्त है।

(४) चित्राङ्कन

श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित गद्यकाव्यों में 'चित्राङ्कन' नामक गद्यकाव्य का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने चित्रकार के व्याज से सरस गद्यकाव्य का चित्रण करते हुए ३ चित्रों पर प्रकाश डाला है। १—रंग-महल का चित्र, २—मानिनी नायिका का चित्र, ३—सुरम्य उद्यान का चित्र।

यहाँ क्रमशः इन्हीं चित्रों पर लेखक का व्यंग्यात्मक सामयिक विचार प्रस्तुत है।

रंगमहल का चित्र—चित्रकार ने इस चित्र में सजावट तो खूब दिखाई है। गगनस्पर्शी गुम्बजों और कनक-कंगूरों की छटा सचमुच निराली और चित्ताकर्षणी है। इन झरोखों से मतवाली चन्द्रमुखियाँ झाँक रही हैं। यह राजदरबार है, इनके ऊपर छत्र तना है, आस-पास चाटुकार सरदार और मंत्री खड़े हैं। राजा के समक्ष एक सुन्दरी वाराङ्गना नृत्य कर रही है, उसके कुटिल कटाक्ष एवं ललित हाव-भावों से दरबारी झूम-से रहे हैं, राजा को तो होश ही नहीं, वे मखमली गद्दे पर लुढ़क कर पड़े हैं। चित्रकार का यह कौशल तो अवश्य प्रशंसनीय है, पर घृणित और विषाक्त है, पुरस्कार के योग्य नहीं। अरे चित्रकार ! यदि पुरस्कार की अभिलाषा हो तो उजड़े ग्राम का चित्र खींच, जिसमें खण्डहर और टूटी-फूटी झोपड़ियाँ हों। खेत और बाग झुलसे और उजड़े पड़े हों। भूख के मारे नन्हे-नन्हें बालक माताओं की गोद में कलप रहे हों। सर्वत्र सर्वनाश का साम्राज्य हो—ऐसे चित्र पर तुझे सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त होगा।

मानिनी नायिका का चित्र—चित्रकार ने इस चित्र में सजावट तो खूब की है। स्फटिक-शिला पर मैली-सी सेज बिछी है, जिस पर मानिनी नायिका करवट पड़ी है, सारा शरीर धूल-धूसरित है, केश खुले हुए हैं, अंग के आभूषण इधर-उधर पड़े हुए हैं। पतिदेव पैरों पर पड़कर मना रहे हैं, परन्तु श्रीमती मानिनीजी उनकी ओर दृष्टि तक नहीं डालती। पतिदेव वशवत हैं, वे करें तो क्या करें।

चित्रकार की यह कला तो अवश्य श्लाघ्य है, पर घृणित और विषाक्त है; पुरस्कार के योग्य नहीं। अरे चित्रकार! यदि पुरस्कार की कामना हो, तो एक शुभ्र मन्दिर का चित्र खींच, जिसमें एक प्रलयंकारिणी महाशक्ति प्रतिष्ठित हों, उनके ज्वलन्त नेत्रों से वह्निशिखा निकल रही हो, अट्टहास की मुद्रा हो। शरीर पर लाल वस्त्र, गले में फूलों की माला, एक हाथ में रक्तरञ्जित कृपाण हो और एक हाथ अनाथ भक्तों को अभय देता हो—ऐसे चित्र पर तुझे सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त होगा।

सुरम्य उद्यान का चित्र— चित्रकार ने इस चित्र में सुन्दर सजावट की है। यह एक उद्यान है, जिसमें लहलही लताओं के मण्डप दर्शनीय हैं। माधवी निकुंज क्या ही मनोमुग्धकारी है। रंग-बिरंगे पक्षियों से यहाँ की शोभा द्विगुणित हो गयी है। उद्यान में सरोवर की छटा निराली है, नवयुवक केलि-किल्लोल कर रहे हैं। यह उद्यान रसिकों का सर्वस्व बना हुआ है। कुछ मनचले तथा निर्लज्ज नवयुवक माधवी लता में आनन्द ले रहे हैं।

चित्रकार की चित्रकला तो अवश्य प्रशंसनीय है, पर घृणित और विषाक्त है, पुरस्कार के योग्य नहीं। अरे चित्रकार! यदि पुरस्कार की लिप्सा हो, तो एक सघन वनखण्ड का चित्र बना, जिसमें पर्वतखण्ड हो, निर्मल नदी कल-कल निनाद करती हो, पक्षी, मृग, गायें तथा मानव उस जल का आनन्द ले रहे हों। नदीतट पर ऋषि-मुनि वेदोच्चारण कर रहे हों। सर्वत्र शान्ति-आनन्द का साम्राज्य हो—ऐसे चित्र पर तुझे अवश्य सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त होगा। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह गद्यकाव्य भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टियों से प्रशस्त है।

(५) आजाद की माताजी

श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'आजाद की माताजी' नामक संस्मरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ आजाद से तात्पर्य श्रीचन्द्रशेखर आजाद से है, जिनके ऊपर पूज्य माता एवं पूज्य पिता की स्पष्ट छाप थी। ये पिता की अपेक्षा माताजी के ही निकट रहते थे। इन्होंने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के सिद्धान्त को अपने जीवन में चरितार्थ किया था।

ये स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रसिद्ध सेनानी थे। इलाहाबाद में अंग्रेज सरकार द्वारा स्थापित 'अलफ्रेड पार्क' में पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट और उनके दल के साथ गोली चलाते हुए सन् १९३१ ई० में मारे गये थे। जब भारत स्वतंत्र हुआ,

तब उस स्थान पर अमर शहीद की स्मृति में इनकी एक मूर्ति स्थापित हुई और उस पार्क का नाम 'आजाद पार्क' के नाम से विख्यात हुआ। ऐसे अमर पुत्ररत्न को खोकर माताजी की क्या दशा हुई, विद्वान् लेखक ने इसी करुण स्मरण का चित्रण किया है।

माताजी के पाँच बालक थे, परन्तु एक के बाद एक पञ्चत्व को प्राप्त होते चले गये जीवन में पतिदेव भी न रहे। विपत्ति पर विपत्ति, अनाथ माता, अकेला जीवन, कोई सहारा नहीं, कहीं से कुछ मिल गया, तो दोनों समय का भोजन एक ही बार बनाकर रख दिया, वही जीवन-यापन का सहाराबना था।

घर पर माताजी का दर्शन एक बार हुआ। उनके आगमन का समाचार सुनते ही मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो घर बैठे-बैठे तीर्थ का दर्शन हो गया हो। घर में प्रवेश करते ही वे मेरे परिवार में ऐसे घुल-मिल गईं, मानो चिर परिचित हों। घर की छोटी-छोटी बालिकाओं एवं छोटे-छोटे बालकों के साथ उनका वात्सल्य पराकाष्ठा को पहुँच गया। जिस समय माताजी का दर्शन हुआ था, उस समय उनकी आयु ७०–७५ वर्ष की थी और पुत्ररत्न आजाद को अमर शहीद हुए १८ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वे अश्रुपूरित नयनों से सभी को उसके जीवन की कहानी सुनाना चाहती थीं। वे कहती थीं कि जब चन्द्रशेखर का जन्म हुआ, तब वह बहुत कमजोर था। उसे साबूदाना की खीर दिया जाता था, जिससे वह हृष्ट-पुष्ट हो गया। उसके ऊपर किसी की दृष्टि न लग जाय, एतदर्थ उसके ललाट पर डिठौना लगा दिया जाता था। वह अपने पिताजी से कम बोलता था। किसी चीज की आवश्यकता होती, तो मुझसे कहता था। मैं अपने पति के पैसों की चोरी करके उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। उसे बर्फी बहुत पसन्द थी, बड़े प्रेम से खाता था। जब कभी बाहर चला जाता, तो उसके लिए चिन्तित हो जाती, उसे चारों तरफ खोजती। एक बार उसे ढूँढ़ती हुई इलाहाबाद के 'अलफ्रेड पार्क' में गई, जहाँ मेरा लाल गोलियों का शिकार हुआ था।

माताजी ने आँसुओं की धारा को पोंछते हुए कहा—'लोहा भट्ठी में जल जाता है, पत्थर भी टूट-टूट कर राख बन जाता है, पर मेरा जी तो देखो, वह पत्थर और लोहे से भी कड़ा है, अट्ठारह वर्षों से भट्ठी में जल रहा है, पर अभी तक नहीं टूटा'।

माताजी जब घर से जाने लगीं, तब स्नेहवश बालिकाओं को एक-एक

पया और छोटे बालकों को चार-चार आने देकर कहा कि 'तुम लोग अपने-पने पसन्द की मिठाई लेकर खा लेना'। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह स्मरण भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टिकोणों से प्रशस्त है।

(६) बाघ से भिड़न्त

श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित आखेट-वर्णनों में 'बाघ से भिड़न्त' नामक ाखेट-वर्णन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने अपने ीवन की एक आखेट-घटना पर प्रकाश डाला है। शर्माजी की आखेटप्रियता सिद्ध थी। दूर-दूर के लोग इन्हें जानते तथा इनका सम्मान करते थे। इनके ाखेट के माननीय मित्रों में श्रीलक्ष्मीदत्तजी मुख्य थे। आखेट में उनकी भी भिरुचि थी। जाड़े की ऋतु थी, सायंकाल का समय था, शर्माजी घर पर ाय पी रहे थे, उसी समय इनके मित्र के साथ टिहरी के एक वृद्ध सज्जन पस्थित हुए, जिनकी दो गायों को बाघ खा गया था। बात-चीत के प्रसंग शर्माजी को बड़ी प्रसन्नता हुई कि बाघ से भिड़न्त का अवसर आ गया। उन दोनों के साथ उस स्थान पर जाने के लिए प्रस्तुत हो गये, जहाँ बाघ गायों का वध किया था।

शर्माजी ने उस पहाड़ी तथा जंगली स्थान पर बाघ के ऊपर विजय ु योजना बनाई। वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि बाघ जंगल ा कूटनीतिज्ञ चाणक्य है, वह अपने शत्रु से सदैव सावधान रहता है। छोटी- ी हिलती पत्ती से, आसन बदलने से, पलक की आवाज से तथा किसी भी कार के खट-खट से अपने शत्रु को समझ लेता है। अतः इन्होंने अपने पाँव जूतों को हाथ में ले लिया, क्योंकि उसकी आवाज से बाघ के सजग होने ी सम्भावना थी।

शर्माजी ने चिड़ियों के चहचहाने के शब्द से अनुमान कर लिया कि र्गा का वाहन इसी के आस-पास है। कुछ ही क्षणों में इन्होंने बाघ को अपनी ी दिशा में आते हुए देखा। वह स्वतन्त्र रूप से अपनी मस्त चाल से इधर चला आ रहा था। उसकी दृष्टि शर्माजी पर पड़ गई। वह गरजता आ पिछले पैरों पर खड़ा हो गया। जिस प्रकार चिड़िया की घात में बैठी ई बिल्ली अपनी पूँछ हिलाती रहती है, उसी प्रकार वह अपनी पूँछ को लाने लगा। शर्माजी का हृदय धक्-धक् करने लगा। उन्होंने सोचा— ह यमराज की साक्षात् मूर्ति है'।

दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने थे, शर्माजी घबड़ाये नहीं, बल्कि धैर्य, साहस तथा कौशल से काम लिये। दोनों एक-दूसरे पर आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु न तो शर्माजी ने फायर किया, न बाघ ने आक्रमण। पता नहीं, वह बाघ क्या सोचकर पीछे मुड़ा और वहाँ से भागना चाहा, उसी समय शर्माजी ने गोली चला दी, जो उसके कमर में लगी और वह गिर गया, परन्तु वह कुछ ही समय पश्चात् उठकर उचक कर शिकारी के ऊपर पंजा से प्रहार कर दिया।

शर्माजी शीघ्रता से एक वृक्ष पर चढ़ गये। बाघ की कमर टूट गयी थी, वह उसी वृक्ष के नीचे गिर कर अपनी अन्तिम श्वास लेने लगा।

बहुत रात्रि व्यतीत होने के बाद जब शर्माजी अपने स्थान पर नहीं आये, तब इनके मित्र दो साथियों के साथ हाथ में लालटेन लेकर वहाँ पहुँचे, बाघ को मरा हुआ तथा शर्माजी को सुरक्षित देखकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए एवं धन्यवाद दिये। तत्पश्चात् परस्पर बातें करते हुए अपने-अपने स्थान पर पदार्पण किये।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह आखेटात्मक घटना भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टिकोणों से प्रशस्त है।

(७) क्या सूझी एलेक्शन की

श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड 'बेढब बनारसी' द्वारा लिखित हास्य वार्ताओं में 'क्या सूझी एलेक्शन की' नामक हास्य वार्ता का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने चुनाव काल में अपने देश की उन रोचक स्थितियों का वर्णन किया है, जिसमें चुनाव लड़ने वाला व्यक्ति जहाँ-जहाँ विश्वासपात्र बनने के लिए जाता है, वहाँ-वहाँ धोखा खाता है। लेखक के इस हास्यात्मक व्यंग्यपूर्ण वर्णन में कटु सत्य भी निहित है। लेखक का कथन है कि कुछ लोग जन्म के अभागे होते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो स्वयं दुर्भाग्य को बुलाते हैं।

मैं जन्म का अभागा हूँ या नहीं—यह तो जन्मकुण्डली से ही विदित हो सकता है, पर इतना निश्चित है कि एक बार मैंने बड़े ही स्वागत-सत्कार के साथ दुर्भाग्य को बुलाया है।

एक बार राज्यसभा का चुनाव होने वाला था। मेरे कुछ मित्र मेरे स्थान पर आये। उन मित्रों में मेरे परम प्रिय गजयुक्त चौबे भी थे। उन्होंने

कहा कि 'मित्र ! यदि किसी की आज प्रतिष्ठा है, आदर है, गौरव है, मान है, प्रसिद्धि है तो एसेम्वली की सदस्यता में है। इस वार तुम भी इस चुनाव-रणक्षेत्र में उतर जाओ, बड़े वनने का यह अच्छा अवसर है।

मेरे अन्य मित्रों ने चौवेजी की बातों का अनुमोदन करते हुए कहा कि आप केवल पर्चा भरकर दाखिल कर दीजिए। जन-जन में प्रचार करके वोट लेना हम लोगों का कार्य है।

किसी ने कहा—बीस हजार वोट हमारे हाथ में है।

किसी ने कहा—पन्द्रह हजार मेरे हाथ में रिजर्व है।

किसी ने कहा—पाँच हजार वोट मैं दिलाऊँगा।

मित्रों के उत्साह दिलाने पर यह चुनाव की बात मेरे मन में बैठ गयी। मैंने सोचा—मेरे मित्र इतनी तत्परता से कार्य करने को प्रस्तुत हैं तो यदि मैं भी थोड़ी-सी चेष्टा करूँ, तो वोट जीत जाना कोई असम्भव नहीं।

मेरे समक्ष ऐसेम्बली का चित्र आने लगा। मैंने पुनः सोचा—इस समय पार्लिमेण्टरी सिक्रेटरी, डिप्टी मिनिस्टर या मिनिस्टर वनने का यह बड़ा शुभ अवसर है। समय चूक जाने पर तो फिर पश्चात्ताप ही हाथ लगेगा—'समय चूक पुनि का पछताने'।

मुझे अपने ऊपर इस बात की हँसी आई कि मैंने इसके पूर्व के चुनावों में क्यों नहीं भाग लिया? आज मैं कितना महान् बन गया होता? परन्तु जो बात बीत गयी, उसे भुलाना ही ठीक है, अब वर्तमान चुनाव को देखना है—'बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय'।

इस बार मैंने चुनाव लड़ने का निश्चय कर लिया, पत्र-पत्रिकाओं में मेरा नाम छपने लगा, जिसे पढ़ कर अनेक परिचित एवं मित्र मेरे निकट आकर धन्यवाद देते हुए कहने लगे—'इस बार आपने बड़ा ही अच्छा कार्य किया, ऐसेम्बली में ऐसे ही कर्मठ विद्वान् की आवश्यकता है, हमलोग कोशिश करके आप ही को जितायेंगे'। ऐसी उत्साहवर्द्धक बातें सुनकर मेरा हृदय उत्साह से ऐसे ही भर गया, जैसे टायर में हवा भर जाती है।

जब चुनाव के पन्द्रह दिन रह गये, वोटर-लिस्ट आ गयी, मेरे कार्यकर्त्ता मित्र अपने-अपने कार्य में लग गये। मैंने एक घोषणा-पत्र छपवाया; प्रचार कार्य प्रारम्भ हो गया। मैंने अपने विशिष्ट साथियों के साथ घूम-घूम कर जनसम्पर्क करने लगा। सर्वप्रथम एक साहुजी के घर पहुँचा। मेरे मित्रों ने

मेरा परिचय दिया और वोट देने के लिए अनुनय-विनय किया। साहुजी कहा—'मैं किसी को नहीं जानता, घुरपतरी साहु जिसे कहेंगे, मैं उसी वोट दूँगा'।

दूसरे नम्बर पर हमलोग एक वकील साहब के घर गये। उन्होंने कहा 'सभी अपने-अपने काम के लिए यहाँ आते हैं। वोट लेने के लिए यहाँ बार आयेंगे, फिर कौन किसको पूछता है?'

तीसरे नम्बर पर हमलोग कालेज के एक लेक्चरर के यहाँ गये। उन कहा—'मैं पढ़ा-लिखा हूँ, मुझे इतना ज्ञान है कि कौन वोट के योग्य वोट किसको देना चाहिए'?

इस प्रकार हमलोग अपने क्षेत्र में प्रायः सभी से सम्पर्क किये और प्र सभी इसी प्रकार का उत्तर दिये। मैंने सोचा कि यदि इतनी तन्मयता साथ ईश्वर को याद किया होता, तो वे अवश्य प्रसन्न हो गये होते।

चुनाव का दिन आ गया, उस दिन मेरे मित्रों ने खूब परिश्रम कि और मैंने भी दौड़-धूप की, मेरे ८ हजार रुपये खर्च हुए, परन्तु जब उस परिणाम सामने आया, तो पता चला कि मुझे कम वोट प्राप्त हुए हैं कि जमानत जप्त हो गयी। परिणाम सुनकर मेरा चेहरा उतर गया।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह हास्यवार्ता भाषा, भाव तथा शैली दृष्टि से प्रशस्त वार्ता है।

(८) स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्र्य का प्रश्न

श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित निबन्धों में 'स्त्री के अर्थ-स्वात का प्रश्न' नामक निबन्ध एक महत्त्वपूर्ण विचारात्मक निबन्ध है। इ भीतर विदुषी लेखिका ने प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक स्त्री सामाजिक स्थिति की व्यवस्थाओं पर अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाश डाला है। इ साथ ही इन्होंने समाज के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित किया है कि भार समाज में स्त्रियों की समस्याओं का समाधान किस प्रकार किया सकता है?

विदुषी लेखिका का कथन है कि आदिम युग से सभ्यता के विकास स्त्री सुख के साधनों में गिनी जाती रही। उसके लिए परस्पर संघर्ष प्रतिद्वन्द्विता चली, महाभारत रचे गये और उसे चाहे इच्छा से हो, अनिच्छा से उसी पुरुष का अनुगमन करना पड़ता रहा, जो विजयी प्रमा

हो सका। पुरुष ने उसके अधिकार अपने सुख की तुला पर तौले, उसकी विशेषता पर नहीं।

यह ध्यानार्ह है कि स्त्री भी पुरुष के समान ही सामाजिक सुविधाओं की अधिकारिणी है, परन्तु केवल अधिकार की दुहाई देकर इसका समाधान नहीं किया जा सकता। प्राचीन समाज में स्त्री की जो स्थिति थी, वही वर्तमान में भी हैं—इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं, यह विचित्र सत्य है।

प्राचीन काल में स्त्री की गौरवमयी स्थिति थी। वह यज्ञ इत्यादि धार्मिक कार्यों में पति के साथ बैठकर सहधर्मिणी बनती थी और गृह की सुचारु व्यवस्था करने के कारण गृहिणी कहलाती थी, परन्तु आर्थिक दृष्टि से वह परतन्त्र ही थी, क्योंकि भर्ता होने के कारण पुरुष अर्थोपार्जन करता था और स्त्री पति के आय के अनुसार गृह के साथ-साथ अपना तथा अपनी सन्तानों की रक्षा करती हुई पतिसेवा में लीन रहती थी।

उस समय जब कन्याओं का विवाह हो जाता था, तब वे अपने पति के साथ उनके घर चली जाती थीं, उन्हें विवाह के अवसर पर जो दान-दहेज मिलता था, वही उनकी सम्पत्ति थी। इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता था। जो कन्याएँ अविवाहित रहती थीं उन्हें तपस्विनी के समान जीवन व्यतीत करना पड़ता था, गृहिणी के समान उन्हें ऐश्वर्यभोग से सदा के लिए वञ्चित रहना पड़ता था।

अपने पिता के वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण करने पर या मृत्यु के पश्चात् पुत्र ही सम्पत्ति का अधिकारो होता था, कन्या या विवाहिता नहीं। पता नहीं, प्राचीन काल में ऐसी व्यवस्था क्यों थी? स्त्री को पिता की सम्पत्ति से वञ्चित करने में क्या उद्देश्य था? उस धर्मप्राण युग में स्त्री को धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से बड़ा ही उन्नत पद दिया, परन्तु उनकी व्यावहारिक कठिनाइयों पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। उस समय के समाज ने उन्हें पर-मुखापेक्षी बनाकर उनकी उपेक्षा की—यह आश्चर्यजनक बात है? वर्तमान समय में समाज के समक्ष एक प्रश्न खड़ा है—स्त्री के अर्थ-स्वातन्त्र्य का?

अब स्त्री की उपेक्षा उचित नहीं। अर्थ के सम्बन्ध में उन्हें मौलिक अधिकार मिलने चाहिए, जिससे वे किसी की मुखापेक्षी न बनें। वे परतन्त्र न बनकर स्वतन्त्र बनें।

विदुषी लेखिका द्वारा लिखित यह निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली की दृष्टि से विचारात्मक प्रशस्त निबन्ध है।

(९) सरजू भैया

श्रीरामवृक्ष वेनीपुरी द्वारा लिखित रेखाचित्रों में 'सरजू भैया' नामक रेखाचित्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने ग्रामीण भाई सरजू भैया के सरल स्वभाव का चित्रण किया है, जो विपत्ति-पर-विपत्ति झेलते रहते हैं, परन्तु धैर्य नहीं छोड़ते।

लेखक का कथन है कि यह मेरे गाँव तथा निकटवर्ती गाँवों की विशेषता है कि यहाँ पुरुषों का नामकरण गंगा, यमुना तथा सरयू आदि नदियों के नाम पर भी हो जाता है, जो शब्द स्त्रीवाचक हैं। जिस प्रकार लोग गंगा मैया, यमुना भैया तथा सरयू भैया कहते हैं, उसी प्रकार गंगा भैया, यमुना भैया तथा सरजू भैया भी कहते हैं। यहाँ मैं सरजू भैया के मानवीय तथा नैतिकता से ओत-प्रोत चरित्र का अंकन कर रहा हूँ।

सरजू भैया मेरे पड़ोसी बड़े भाई हैं और मैं उनका छोटा भाई। वे पढ़े-लिखे तो नहीं, परन्तु वड़े ही मिलनसार, परोपकारी, प्रसन्नचित्त तथा हास्यविनोदी व्यक्ति हैं। वे उन धनी-मानी व्यक्तियों में हैं, जो केवल अपने परिवार की ही नहीं, बल्कि अतिथियों एवं दीन-दुःखियों की भी सतत सेवा करते रहते हैं। इनका शरीर हृष्ट-पुष्ट, मोटा-तगड़ा नहीं बल्कि दुर्बल है। एक कहावत है कि 'काजी जी दुर्बल क्यों ? शहर के अंदेशे से।'

बात सत्य है, इनकी दुर्बलता अपने कारण नहीं, दूसरों के कारण है। दूसरों की सेवा करने में इन्होंने अपना शरीर ही नहीं सुखाया, बल्कि अपना धन-सम्पत्ति भी सुखा दिया।

पिता के एक मात्र उत्तराधिकारी होने के कारण इनके निकट पैतृक सम्पत्ति खूब थी—मकान, धन, खेत सभी कुछ था। घर में सुन्दर पतिव्रता स्त्री तथा पाँच कन्याएँ, घर आनन्द से परिपूर्ण था।

सरजू भैया का हृदय वड़ा ही उदार था। इनके घर जो भी दुखिया याचक आया और अश्रुपूरित नयनों से अपने दुःख की कहानी कही, इन्होंने उसकी माँग के अनुसार धन दे दिया। तत्पश्चात् व्याज लेने की कौन कहे, मूल लेने की भी चर्चा इन्होंने नहीं की।

गाँव में किसी की बीमारी का समाचार सुनते ही वैद्य के यहाँ जाना, किसी को किसी वस्तु की आवश्यकता है, तत्काल ले आकर उसे देना; किसी के घर में विवाह है, उसके घर जाकर प्रबन्ध करना; किसी की मृत्यु के समय,

चाहे दिन हो या रात तुरन्त अन्त्येष्टि क्रिया-निमित्त श्मशान तक जाना— ये सभी कार्य इनकी दिनचर्या में थे।

जिस प्रकार डॉक्टर का दरवाजा तथा पादरी का फाटक सभी के लिए खोले रहने का नियम है, उसी प्रकार सरजू भैया का कपाट सभी के लिए खुला रहता था।

सरजू भैया का व्यक्तित्व सभी के लिए केवल अनुकरणीय एवं अनुसरणीय ही नहीं था, वल्कि वन्दनीय एवं पूजनीय भी था, परन्तु ऐसे देवता को कभी-कभी धूर्त ठग परेशान भी करते थे और इन्हें विपत्ति में पड़ा देखकर ठहाका मार कर हँसते भी थे।

एक बार सरजू भैया को कुछ रुपयों की आवश्यकता पड़ गई। इन्होंने एक सेठ से कुछ रुपये लिये, उसने इनसे एक कागद पर अंगूठा निशानी करा लिया। बाद में उस धूर्त ने इनसे कहा—'जल्द रुपये दे दो, नहीं तो नालिश कर दूँगा।'

मैंने इन्हें आश्वासन देकर आश्वस्त किया।

धर्मपत्नी की मृत्यु के बाद सरजू भैया के सामने पुनः विवाह करने की समस्या उपस्थित हुई, घर की स्त्रियों ने जब बाध्य किया तब इन्होंने हँसते हुए कहा कि 'ठीक है, मैं शादी करूँ और शर्माजी को नई भौजाई से चुहुल करने का मजा मिले, क्यों ?'

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह रेखाचित्र भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टिकोणों से प्रशस्त है।

(१०) बन्दी पिता का पत्र

श्रीकमलापति त्रिपाठी द्वारा लिखित पत्रात्मक निबन्धों में 'वन्दी पिता का पत्र' नामक निबन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसे इन्होंने नैनी सेण्ट्रल जेल से प्रिय लालजी को सम्बोधित करके लिखा है। इस निबन्ध में जेल का वातावरण तथा कैदियों के द्वारा मनाये गये त्योहारों में होली का वर्णन किया है।

विद्वान् लेखक का कथन है कि आज जेल में होली का त्योहार मनाया जा रहा है, परन्तु इन कैदियों के जीवन में आनन्द, सुख और सन्तोष कहाँ ? जो पशुओं के समान पीसे जाते हैं, जो समाज से उपेक्षित हैं, जिनके लिए जगत् में सम्मानपूर्वक खड़े होने को स्थान नहीं, जिनका भविष्य अन्धकार

में है और जिनमें बहुतों के जीवन में अनेक वर्ष यहीं समाधिस्थ हो गये—उनके जीवन में कहाँ होली? कहाँ दीपावली?

यहाँ ऐसे भी प्राणी हैं, जिनकी सारी जवानी इसी में कट गयी, बुढ़ापा यहीं आ गया और मौत भी सम्भवतः यहीं आकर उन्हें मुक्त करेगी।

ऐसे लोगों की संख्या भी यहाँ बहुत है, जिन्हें यह भी पता नहीं है कि उनके घर की क्या दशा है? अपने जिन बच्चों को वे छोड़कर आये थे, वे अब कैसे हैं? उनके घर वाले भी उनको भूल चुके हैं। वे यदि आज कहीं छूटकर घर जायें और अपने सौभाग्य से अपने बेटों से मिलें तथा अपनी बीबी के सामने खड़े हों, तो शायद न बेटा अपने बाप को पहचानेगा और न बीबी अपने मियाँ को। इन कैदियों के हृदय के तार टूटे हुए हैं, फिर भी इनके हृदय में होली मनाने का उत्साह है। कोई नाच रहा है, कोई ढपली बजा रहा है, कोई गा रहा है, कोई अबीर लगा रहा है, कोई रंग छोड़ रहा है।

होली के साथ एक प्राचीन इतिहास है। यमुना के तट पर कुंजों के बीच व्रजनन्दन कृष्ण ने गोपियों के साथ होली खेली थीं। आज होली का त्योहार है। अतः तुम सभी बच्चों की याद आ रही है। घर पर सभी बच्चे मिल-जुल कर जो धूम मचाते थे, जो रंगबाजी और हल्ला-गुल्ला होता था, मैं यहाँ बैठे-बैठे याद कर रहा हूँ। मैं तुम लोगो का उत्पात देखकर झुंझलाता था, उलझ पड़ता था, डाँट भी देता था। आज इस होली के त्योहार पर इस जेल में बैठे-बैठे हृदय में टीस हो रही है, इसी को दूर करने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

इसके पूर्व गांधीजी के २१ दिनों के अनशन का समाचार सुनकर मन घबड़ा गया था। मैं सोचता था कि ब्रिटेन की निष्ठुर सरकार पर इसका कुछ भी प्रभाव क्यों न पड़ा? फिर भी मेरे मन में महात्माजी की सत्य और अहिंसा, तपस्या और भगवान् में विश्वास की भावना को देखते हुए मुझे भी दृढ़ विश्वास था कि गांधीजी अजेय महापुरुष हैं। अनशन के कारण उनका शरीर अवश्य कमजोर हो रहा है, परन्तु भारतवासियों का अगाध प्रेम उन्हें मृत्यु के गाल से बचा लेगा। अन्त में वही हुआ, अन्यथा पराधीन भारत उस समय अन्धकाराच्छन्न हो जाता।

मेरा मन अशान्त वातावरण से थोड़ा शान्त रहा और मैंने हाथ में लेखनी-कागज लेकर यह पत्र लिखा। अब कुछ ही दिनों के बाद दूसरा पत्र लिखूंगा।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह पत्रात्मक निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली सभी दृष्टियों से प्रशस्त है।

(११) पहला रिपोर्टर

श्रीसच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा लिखित ललित निबन्धों में 'पहला रिपोर्टर' नामक निबन्ध का विशिष्ट स्थान है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने वैदिक तथा पौराणिक युग से लेकर अब तक के रिपोर्टर के अस्तित्व के इतिहास पर बहुत ही सुन्दर व्यंग्यात्मक एवं विनोदात्मक प्रकाश डाला है। रिपोर्टर शब्द का अर्थ है—रिपोर्ट देने वाला पुरुष या रिपोर्ट देने वाली स्त्री। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि संवाद देने वाला पुरुष या संवाद देने वाली स्त्री।

रिपोर्टर या संवाददाता का कार्य नैतिकता तथा सच्चाई से ओत-प्रोत होता है, यही इसका आदर्श है। यदि इस आदर्श का दृढ़तापूर्वक पालन हुआ, तो इसका परिणाम शुभ होता है, अन्यथा स्त्री की वाचालता का रूप ग्रहण कर लेता है।

विद्वान् लेखक ने इस निबन्ध का श्रीगणेश बड़ी ही युक्ति से किया है। उसका कथन है कि सृष्टिक्रम में पहले पुरुष हुआ या स्त्री ? बीज हुआ या वृक्ष ? यह प्रश्न केवल हवाई बहस है, परन्तु यदि यह प्रश्न हो कि पहला रिपोर्टर कौन था या कौन थी, पुरुष या स्त्री ? तो इस पर विचार किया जा सकता है। वैदिक युग में आदिपुरुष मनु के साथ-साथ इडा का भी नाम लिया जाता है। इडा का अर्थ है बुद्धि, वाणी, सरस्वती। मनु तो मननशील थे, रिपोर्टर नहीं, रिपोर्ट या संवाद का कार्य इडा ने ही किया। अतः पहले रिपोर्टर या संवाददाता के रूप में इडा को ही श्रेय मिलना चाहिए। यजुर्वेद के मंत्रों में प्रचुर मात्रा में इडा की प्रार्थना की गयी है।

पौराणिक युग में एक ऋषिकुमार थे, उनका नाम था नचिकेता; जो अपने पिता के आदेश से यमपुरी गये थे। वहाँ यम-नचिकेता में संवाद हुआ। अतः उस युग में इन्हें रिपोर्टर या संवाददाता पद की प्रतिष्ठा मिली।

इसके बाद तो अनेक रिपोर्टर या संवाददाता का क्रम सामने आने लगा। कविकुलगुरु कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में रिपोर्टर का काम प्रियंवदा करती थी। वह अपनी वाक्पटुता के द्वारा अपनी प्रिय सखी शकुन्तला से कहती है कि 'चक्रवाक वधू अब अपने सहचर को विदा करो;

रात आ गयी'। इस वाणी के अभिप्राय को समझकर शकुन्तला अपने प्रियतम राजा दुष्यन्त को विदा कर देती है।

महाभारत के सञ्जय भी रिपोर्टर हैं। व्यासजी के आशीर्वाद से इन्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई थी, जिससे ये महाभारत युद्ध के समय प्रज्ञाचक्षु महाराजा धृतराष्ट्र के निकट बैठकर युद्ध की घटनाओं का वर्णन करते उन्हें सुनाते थे।

रिपोर्टर की दो-एक घटनाएँ और हैं। ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री चर्चिल एक महायुद्ध का रिपोर्ट लिख रहे थे, एक सैनिक रिपोर्टर का काम कर रहा था। प्रधानमंत्री ने उससे कहा—'यदि तुम्हारी बतायी हुई बातें सत्य नहीं हुईं, तो मैं तुम्हें शेर के हवाले कर दूँगा'।

एक बार यूनानियों में महाभारत के समान युद्ध हुआ था, उस समय एक रिपोर्टर थी स्त्री—नासिकेया। यह नाम प्राचीन नचिकेता से मिलता-जुलता है। स्त्री-रिपोर्टर से संवाददाता नहीं, बल्कि संवादप्रचारक तथा वितरक का बोध होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि गाँव के किसी कुएँ पर, शहर-मुहल्ले के किसी जल-कल पर, गलियों में छज्जों पर संवाद प्रचार और संवाद सर्जन का काम स्त्रियाँ ही करती हैं।

आज स्त्री सभी प्रकार से मुक्त है, स्वतन्त्र है। वह सामाजिक बुद्धि है। वह कहती है कि मैं यूनियन की ओर से बोल रही हूँ, मेरा संवाद मान्य है, मानना ही पड़ेगा।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह ललित निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टिकोणों से प्रशस्त है।

(१२) तूफान के विजेता

श्रीरांगेय राघव द्वारा लिखित रिपोर्ताजों में 'तूफान का विजेता' एक प्रमुख रिपोर्ताज़ है।

विद्वान् लेखक ने इसके भीतर सन् १९४२ ई० के बंगाल के अकाल का आँखों देखा वर्णन किया है। वहाँ सहायतार्थ जो डॉक्टर तथा विद्यार्थी गये हुए थे, उनमें राघवजी भी थे।

इन्होंने वहाँ के ग्रामाञ्चलों में स्थित दीन-हीन किसानों तथा नाविकों का अच्छा चित्रण किया है। जब वहाँ से वे ससम्मान विदा होकर प्रसन्नतापूर्वक डॉक्टर तथा विद्यार्थियों के साथ नदी के किनारे आये, उस समय रात्रि का

समय था। हवा चल रही थी, नदी फुफकार रही थी, लहरें उठ रही थीं, सभी लोग नाव पर बैठ गये।

नाविक के लड़के ने नाव को ठेलकर प्रवाह में किया, नाव पानी पर उछलने लगी।

डॉक्टर साहब ने नाविक से कहा—'मैं भी नाव को खेऊँगा'।

नाविक ने कहा—'आप, अच्छा, खेवें'।

नाविक के लड़के तथा डॉक्टर दोनों ने नाव खेना प्रारम्भ किया, हवा तेजी से वहने लगी, नाव हिलने लगी।

नाव के मालिक ने अपने लड़के से कहा—'पाल खोलकर गिरा दो'। नाव का मालिक स्वयं नाव खेने लगा। डॉक्टर साहब पतवार लिये थे। मालिक ने कहा—'डॉक्टर साहव, आप पतवार लड़के को दे दें'।

डॉक्टर साहब ने पतवार लड़के को दे दिया। वाप-वेटे दोनों नाव खेने लगे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो नाव डूब जायेगी। सभी के समक्ष मौत का दृश्य नृत्य करने लगा।

नाविक ने चिल्लाकर कहा—अरे, तूफान……।

सभी लोग घवड़ा गये, परन्तु सभी को आश्वासन देते हुए नाविक ने कहा—'डरना नहीं, यह पहला तूफान नहीं है'।

इस समय मुझे याद आया चण्डीदास की वह पुकार—'माझी का धर्म है अपने ऊपर निर्भर रहने वालों को अपने से पहले बचाना'। तूफान में नाव नौ-नौ फीट उछल रही थी। सहसा नाविक नाव पर खड़ा हो गया, भयभीत होकर सभी खड़े हो गये। मृत्यु…मृत्यु…निस्तब्ध शंकित हृदय…।

नाविक ने सभी को भयग्रस्त देखकर अपने लड़के से कहा—'वेटा, जल में कूद कर पूरा बल लगाकर नाव को खींचकर स्टीमर की ओर ले चलो'।

क्षण भर बाद मैंने देखा—नौका स्टीमर के पीछे, किनारे पर लग गयी है, वहाँ पानी विलकुल शान्त था।

उस दिन मुझे यह स्पष्ट प्रतीत हुआ कि बंगाल की मानवता की संस्कृति ने तूफान में फँसी नाव को बचा लिया। वह संस्कृति अक्षय है, महान् है। उस तट पर घना अन्धकार था, पर जीवन मुस्करा रहा था।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह रिपोर्ताज भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टियों से प्रशस्त है।

(१३) काठमाण्डू दर्शन

डॉ० नगेन्द्र द्वारा लिखित यात्रात्मक निबन्धों में 'काठमाण्डू दर्शन' का विशेष महत्त्व है। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह एक नेपाल की राजधानी काठमाण्डू की यात्रा पर आधारित संस्मरण है, जिसमें प्राचीन-नवीन संस्कृतियों के साथ काठमाण्डू के प्रसिद्ध मन्दिरों एवं वहाँ के विश्वविद्यालय की सुषमा एवं रमणीयता का आँखों देखा वर्णन है। लेखक ने यह यात्रा मार्च सन् १९६७ ई० में की थी।

विद्वान् लेखक का कथन है कि जाड़े के दिनों में मैंने वायुयान द्वारा देल्ली से काठमाण्डू की यात्रा की थी, मार्ग में अनेक सघन वन एवं पर्वत-श्रेणियाँ दृष्टिगत हुईं, जिनमें नगाधिराज हिमालय तो मेरे आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु ही था, जिसकी महिमा का गुणगान अनेक ऋषि-मुनियों तथा कवियों ने अपनी-अपनी कृतियों में किया है। मेरी आँखों के समक्ष महर्षि व्यास, वाल्मीकि तथा महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित हिमालय पर भगवान् शिव की तपस्या तथा तप में विघ्न डालने वाले कामदेव के दहन का स्थान नृत्य करने लगा। तत्पश्चात् आधुनिक हिन्दी जगत् के कवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी की वह कविता याद आने लगी, जिसमें उन्होंने प्रलय के उपरान्त हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर विराजमान मनु का चित्रण किया है—

'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह'॥

'दिनकर' जी की वह कविता, जिसमें उन्होंने 'हिमालय के प्रति' लिखा है, मेरे कानों में गूँजने लगी—

'मेरे नगपति मेरे विशाल।
जिसके द्वारों पर खड़ा क्रान्त
सीमापति ! तूने की पुकार—
पद दलित इसे करना पीछे।
पहले ले मेरा शिर उतार'॥

हिमालय का नाम हिमगिरि, नगपति, नगेन्द्र आदि अनेक हैं। इसी समय मुझे अपने नाम नागेन्द्र तथा परिवर्तित नाम नगेन्द्र की भी याद आयी। मेरे पैतामह ने मेरा नाम नागेन्द्र तथा परिवर्तित नाम नगेन्द्र की भी याद आयी।

मेरे पितामह ने मेरा नाम नागेन्द्र रखा था और बाल्यावस्था से लेकर कक्षा १० के विद्यार्थी अवस्था तक मेरा नाम नागेन्द्र ही रहा, परन्तु एक दिन एक अध्यापक ने मुझे नगेन्द्र कहना प्रारम्भ किया और उसी समय से मैं नागेन्द्र से नगेन्द्र हो गया। यह नाम मुझे भी प्रिय लगा, इसके अर्थ में भी सौन्दर्य है।

वायुयान अपनी गति से आगे बढ़ रहा था। इसी समय विमान की परिचारिका ने यात्रियों को सूचना दी कि वायुयान नेपाल राज्य में प्रवेश करके अब काठमाण्डू में उतरने ही वाला है।

यात्री सजग हो गये और काठमाण्डू के हवाई अड्डे पर उतरने की तैयारी करने लगे। विश्वविद्यालय की ओर से मेरे ठहरने की व्यवस्था एक होटल में थी, परन्तु मेरे आने का समाचार पाकर मेरे एक मित्र वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः वे अपने स्थान पर ले गये।

मैंने अपने मित्र से निवेदन किया कि 'सुना है कि नेपाल पर्यटकों के लिए स्वर्ग है, प्रकृति और कला का ऐसा अपूर्व वैभव अन्यत्र दुर्लभ है। मैं केवल दो दिनों के लिए ही यहाँ आया हूँ। अतः इन्हीं दिनों में यहाँ की सुषमा देखना चाहता हूँ'।

मेरे मित्र ने कहा कि 'दो दिनों में तो आप यहाँ के सभी दर्शनीय स्थानों की तालिका भी नहीं बना सकेंगे, देखना तो दूर रहा। हाँ, केवल प्रसिद्ध दर्शनीय स्थानों को देख सकेंगे'।

रात हो गयी थी। अतः दूसरे दिन काठमाण्डू के विशेष दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए निश्चित किया गया।

१. काष्ठमण्डप—यह मण्डप शहर के मध्य में अवस्थित है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एक ही महावृक्ष के काष्ठ से निर्मित है। प्रारम्भ में यह विश्रामगृह था, पर अब यह देवस्थान के रूप में प्रतिष्ठित है। इसी का तद्भव रूप काठमाण्डू है।

२. स्वयम्भूनाथ—यह एक पर्वतखण्ड के ऊपर है, इसमें भगवान् बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा है। इसका शिल्प प्रशंसनीय है।

३. पाटन का कृष्णमन्दिर—यह मन्दिर दो हजार वर्ष प्राचीन है। इसकी वास्तु कला दर्शनीय है, इसमें अद्भुत चमत्कार है।

४. पशुपतिनाथ—नेपाल के दर्शनीय मन्दिरों में यह सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। इस मन्दिर में दर्शनार्थियों की बहुत अधिक भीड़ थी, धक्का-मुक्की सहते हुए

मित्रों के साथ हम भगवान् पशुपतिनाथ के सामने पहुँच गये और दर्शन करके शीघ्र ही उस स्थान पर आ गये, जहाँ उनके विशाल वाहन पशुपति नन्दी थे।

भगवान् पशुपतिनाथ में भक्तों की भक्ति तथा श्रद्धा देखकर मुझे बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

५. त्रिभुवन विश्वविद्यालय—देवदर्शन के ही समान वहाँ का विश्वविद्यालय भी दर्शनीय है। वह विशाल भूमिखण्ड, जहाँ विश्वविद्यालय निर्मित है, पर्वतमाला से घिरा हुआ अर्द्धचन्द्राकार है। इसकी भव्य शोभा अनुपम है। वहाँ के कुलपति, आचार्य तथा प्राध्यापकों से मिलकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई। आयोजित स्थान में मेरा भाषण भी हुआ, जिससे लोग विशेष प्रभावित थे।

अन्त में मैं अपने मित्र के साथ उनके स्थान पर आया और फिर वहाँ से दिल्ली जाने के लिए उनके साथ हवाई अड्डा चल दिये।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह यात्रात्मक निबन्ध भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टियों से प्रशस्त है।

(१४) क्यों रो रहे हो ?

श्रीकन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' द्वारा लिखित लघु कथाओं में 'क्यों रो रहे हो ?' नामक लघु कथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वान् लेखक ने इसके भीतर बड़े ही रोचक ढंग से अभिव्यक्त किया है कि कला का आदर केवल कलापारखी मर्मज्ञ ही कर सकता है, कला-अनभिज्ञ नहीं। दिन-रात बहुत ही परिश्रम करके पहाड़ी गाँव के एक कलाकार ने अपनी छेनी तथा हथौड़ी से एक देवप्रतिमा तैयार की। ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह प्रतिमा सजीव होकर मुस्करा रही हो। कलाकार उस प्रतिमा को देखकर मुग्ध था, उसे और सुन्दर रूप देना चाहता था, परन्तु इसी बीच युद्ध छिड़ गया और वह कलाकार उस देवप्रतिमा को वहीं अपने घर में ही छोड़कर सिपाही वेष में युद्ध करने चला गया। जब युद्ध से थोड़ा विश्राम मिलता, तो वह अपनी निर्मित देवप्रतिमा के रूप में डूब जाता, उसे कभी नहीं भूलता। वह सोचता था कि उस देवप्रतिमा को और सुन्दर रूप देना है।

दैवयोग से युद्ध समाप्त हो गया। कलाकार देवप्रतिमा का ध्यान करता हुआ अपने पहाड़ी गाँव की सीमा पर आया, वह अपने पड़ोसियों को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

एक ने कहा—'भाई, पानी बरसने से बरसात के कारण तुम्हारा घर गिर गया'।

दूसरे ने कहा—'घर तो गिरा ही, सब सामान भी नष्ट हो गया'।

कलाकार ने पूछा—'और मेरी 'पत्थर की प्रतिमा' ?

तीसरे ने कहा—'हाँ, वह तो सुरक्षित है। भैया, वह पत्थर बड़े काम का है'।

कलाकार ने कहा—'अच्छा, तब तुम लोग उसका मूल्य समझते हो'।

पुनः तीसरे ने कहा—'हाँ भैया, मैंने उसे उठाकर कुएँ के पास रख दिया है। अब सभी स्त्रियाँ उस पर अपना-अपना वस्त्र धोतीं हैं'।

चौथे ने कहा—'केवल स्त्रियों के ही नहीं; बल्कि हम पुरुषों के बड़े काम का वह पत्थर है। गड़ासा, खुरपा तेज करने के लिए हम लोगों को बहुत दूर नदी के पुल पर जाना पड़ता था, अब हम लोग इसी पर रगड़-रगड़ कर उसे तेज कर लेते हैं'।

पाँचवें ने कहा—'भैया, यह बड़े काम का पत्थर है। अब हमलोग उसे तुम्हें नहीं देंगे। अब वह हम लोगों का हो गया है'।

कला की यह दशा सुनते ही कलाकार की आँखों से अश्रुधारा बह चली।

सभी पड़ोसियों ने पूछा—'भैया, तुम रो क्यों रहे हो ?'

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह लघु कथा भाषा, भाव तथा शैली समस्त दृष्टिकोणों से प्रशस्त कथा है।

प्रमुख स्थलों की सप्रसंग व्याख्या

(१) एक बार मुझे·········उगा सकता था।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित 'शिरीष के फूल' नामक निबन्ध से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने शिरीष फूल की कोमलता का वर्णन किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि शिरीष का वृक्ष एक विचित्र अवधूत के समान है। चाहे दुःख हो, चाहे सुख—यह सदैव एक समान रहता है। इसके लिए वही कहावत चरितार्थ है 'न ऊधो का लेना, न माधो का देना। ग्रीष्म ऋतु में जब पृथ्वी-आकाश जलते रहते हैं, उस समय भी पता नहीं, यह वृक्ष कहाँ से अपने जीवन के लिए रस प्राप्त कर लेता है। यह प्रत्येक ऋतु में आनन्दमग्न रहने वाला वृक्ष है। वनस्पति विज्ञान वेत्ताओं का कथन

है कि वह उस श्रेणी का वृक्ष है, जो वायु मण्डल से अपना रस प्राप्त करता है। यह बात ठीक है, अन्यथा यह ग्रीष्म कालीन भयंकर लू के समय इतने कोमल तंतुओं तथा सुकुमार केशरों को कैसे उत्पन्न कर सकता।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में शिरीष वृक्ष के वैशिष्ट्य का अच्छा चित्रण किया है। इसके लिए 'अवधूत' की उपमा सार्थक है।

(२) यवन राज के········सब पर प्रभाव डाला।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीभगवत शरण उपाध्याय द्वारा लिखित 'गरुड़-ध्वज' नामक ऐतिहासिक गाथात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। विद्वान् लेखक ने इसके भीतर उस समय का वर्णन किया है, जिस समय तक्षशिला के मगध राज्य और मगध साम्राज्य की सीमाओं में कुछ विवाद खड़ा हो गया था, यवनों ने शुंग सीमा पर मगध नागरिकों को अपमानित किया था, जिससे मगध सम्राट् सुज्येष्ठ ने क्रोधित होकर यवन राज को युद्ध के लिए चेतावनी दी थी।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि मगध राज के युद्ध की चेतावनी से यवन राज के साहसी सेनापति प्रसन्न होकर उछल पड़े, उनसे यवन राज अन्त लिखित ने शान्तिपूर्वक कार्य करने के लिए कहा, परन्तु इस विकट अवसर पर मंत्री हेलिओदोर ने नीति से काम लेते हुए युद्ध की आँधी को शान्त कर दिया। उसने सभी को समझाया कि जब पश्चिम और उत्तर में विप्लव की सम्भावना है, तब ऐसी स्थिति में मागधों से युद्ध के लिए प्रस्तुत होना मूर्खता है। दूरदर्शी मंत्री की बातों से सभी प्रभावित हुए और युद्ध की सम्भावना टल गयी।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में यवन राज मंत्री हेलिओदोर की तात्कालिक बुद्धि एवं नीति पर अच्छा प्रकाश डाला है, जिसके कारण भविष्य का विप्लव शान्त हो गया।

(३) वसुमित्र ने यवन········तत्पर हो गया।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीभगवत शरण उपाध्याय द्वारा लिखित 'गरुड़-ध्वज' नामक ऐतिहासिक गाथात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने उस समय का चित्रण किया है, जिस समय यवन राज मंत्री हेलिओदोर राजदूत बनकर विदिशा के शासक वसुमित्र के निकट जाकर मगध राज से सन्धि हेतु अपने राजा का प्रस्ताव उपस्थित करता है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि विदिशा के शासक वसुमित्र ने यवन दूत की मर्मयुक्त बातें सुनकर उसकी अर्थयुक्त नीति को हृदयंगम किया और अपनी उदार बुद्धि का परिचय दिया। यदि इस शासक के स्थान पर कोई दूसरा होता, तो साम्राज्य की मर्यादा का ध्यान करते हुए क्रोधित होकर सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार न करके युद्ध के लिए ही उद्योग करता, जिससे साम्राज़्य को क्षति पहुँचती, परन्तु इन्होंने अपनी दूरदर्शिता की नीति से काम लिया और सन्धि प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में विदिशा के शासक वसुमित्र की उदार बुद्धि एवं दूरदर्शिता पर अच्छा प्रकाश डाला है।

(४) कर्वी से चित्रकूट·········हो सकता था।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीराहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित 'चित्रकूट की छाया में" नामक आत्मकथात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने अपनी चित्रकूट यात्रा का वर्णन किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि कर्वी स्टेशन से चित्रकूट पर्वत तथा साधु-सन्तों के आश्रम बिल्कुल निकट हैं। मैंने उस पर्वत की परिक्रमा अनेक बार किया है। आर्य समाजी विचारधारा होने के कारण मेरे मन में धार्मिक भावना तो नहीं थी, परन्तु प्रकृति की रमणीयता देखने की भावना अवश्य थी। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में चित्रकूट की जिस सुषमा का वर्णन किया है, उससे मैं प्रभावित था। इसके पूर्व मैंने हिमालय की प्राकृतिक छटा का अवलोकन कर चुका था। अतः उसकी अपेक्षा यहाँ की रमणीयता असीम न होकर सीमित थी।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में चित्रकूट की रमणीयता का अच्छा वर्णन किया है। चाहे भक्ति भावना से प्रेरित होकर चाहे प्राकृतिक सुषमा से प्रभावित होकर जिस भाव से भी चित्रकूट का दर्शन हो, श्लाघ्य है।

(५) यह कैसा चित्र·········दरबार का दृश्य है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'चित्राङ्कन' नामक गद्य काव्य से अवतरित किया गया। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने राज दरबार का चित्राङ्कन किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि हे चित्रकार, तुम्हारे द्वारा निर्मित यह किसका चित्र है? मुझे तो प्रतीत होता है कि यह किसी राज

घराने के राजमहल का चित्र है। इसकी साज-सज्जा तो खूब है। आकाश को स्पर्श करने वाले गुम्बजों तथा स्वर्णमय कंगूरों की शोभा बड़ी ही निराली तथा चित्ताकर्षक है। इसके झरोखे भी बड़े सुन्दर हैं, इनसे मतवाली चन्द्रमुखी स्त्रियाँ झांक रही हैं। अच्छा, अब विदित हो गया—यह राज दरबार का चित्र है।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में बहुत ही सुन्दर काव्यात्मक वर्णन किया है। इस गद्य में पद्य का सा आनन्द है।

(६) तुझे कुछ खींचना·········दिया जायेगा।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'चित्राङ्कन' नामक गद्य काव्य से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने उजड़े गाँव का चित्राङ्कन कियां है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि हे चित्रकार, क्या तुम उजड़े ग्राम का चित्राङ्कन कर सकता है, जिसमें उजड़े ग्राम हों, जहाँ-तहाँ खण्डहर और टूटी-फूटी झोपड़ियाँ हों। खेत और बागों की भी यही दशा हो। वे भी झुलसे और उजड़े हों। कहीं पर प्रचण्ड भीषण अग्नि हो। कहीं पर अत्याचार से पीड़ित नर कंकाल हों। कहीं भूख से पीड़ित नन्हें-नन्हें शिशु कराह रहे हों। कहीं लूट-पाट, मार-पीट हो रही हो, सर्वत्र सर्वनाश का साम्राज्य हो। चित्रकार के लिए यह चित्र पुरस्कार योग्य है, उसे प्रधान स्थान प्राप्त हो सकता है।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में बहुत ही सुन्दर काव्यात्मक चमत्कार दिखलाया है। इस गद्य में पद्य के समान आनन्द आता है।

(७) यह कैसा चित्र·········वज्र टूट पड़ा है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'चित्राङ्कन' नामक गद्य काव्य से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने एक मानिनी नायिका का चित्राङ्कन किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि हे चित्रकार, तुम्हारे द्वारा निर्मित यह किसका चित्र है? मुझे तो प्रतीत होता है कि मानिनी नायिका का चित्र है, क्योंकि वह कोपभवन में, स्फटिक शिला पर, मलिन बिस्तर पर करवट पड़ी है। उसका शरीर धूलधूसरित है, सिर के बाल अस्त-व्यस्त हैं,

शरीर पर कोई आभूषण नहीं, वे इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। दो सखियाँ सेवा में लग्न हैं। पतिदेव पाँव पर सिर रखकर मान भंग करने के लिए अनुनय-विनय कर रहे हैं, पर श्रीमती मानिनी देवी उनकी ओर दृष्टिपात तक नहीं करतीं। स्त्री-भक्त पति की यही दशा होती है, मानो उन पर वज्रपात हो गया हो।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में बहुत ही सुन्दर काव्यात्मक चित्रण किया है। इस गद्य में पद्य के समान आनन्द आता है।

(८) मुझे कुछ खींचना······दिया जायेगा।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'चित्राङ्कन' नामक गद्य काव्य से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने एक शुभ्र मन्दिर का चित्राङ्कन किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि हे चित्रकार, क्या तुम एक शुभ्र मन्दिर का चित्र बना सकते हो, जिसके चारों ओर अग्निकुण्ड में प्रदीप्त अग्निशिखाएँ हों, मन्दिर के भीतर प्रचण्ड महाकाली की प्रतिमा हो, जिनके नेत्रों से क्रोधाग्नि निकल रही हो, मुख पर अट्टहास की झलक हो, बिजली के समान दांत चमक रहे हों, गले में लाल फूलों की माला हो, शरीर रक्त-रंजित हो, लम्बे-लम्बे बाल हों। एक हाथ भक्तों को अभय दे रहा हो, दूसरे में कराल तलवार हो। मन्दिर में अखण्ड तेज और प्रचण्ड पराक्रम का साम्राज्य दृष्टिगत होता हो। चित्रकार के लिए ऐसा चित्र पुरस्कार योग्य है, उसे प्रधान स्थान भी प्राप्त हो सकता है।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में बहुत ही सुन्दर साहित्यिक चित्रण किया है। इस गद्य में पद्य के समान आनन्द आता है।

(९) यह कैसा चित्र·········कलम तोड़ दी है।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'चित्राङ्कन' नामक गद्य काव्य से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने सुरम्य उद्यान का चित्राङ्कन किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि हे चित्रकार, तुम्हारे द्वारा निर्मित यह किसका चित्र है? मुझे तो प्रतीत होता है कि यह किसी सुरम्य उद्यान का चित्र है। इसकी छटा बड़ी ही निराली है, हरी-भरी लताओं के मण्डप एवं ग्रीष्म भवन बड़े ही अनुपम हैं। यहाँ की क्यारियों तथा गमलों के

पुष्पों की छटा तो देखने ही योग्य है। बासन्ती निकुंज की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है, देखते ही मन मोह लेती है। वृक्षों की डालियों पर रंग-बिरंगे पक्षी, नृत्य करते हुए मयूर, हिंडोलों पर झूलते हुए मन चले रसिक, पद्म सरोवर में केलि करते हुए निर्लज्ज नव युवकों का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। इतना ही नहीं, वल्कि कुछ जन कमल की नाल को स्पर्श कर रहे हैं, कोई अधखिले फूल तोड़-तोड़कर उछाल रहे हैं। यह दृश्य भी बड़ा ही सुहावना है। माधवी निकुंज तो अपने ढंग का निराला है, उसमें गान-वाद्य मन को आकर्षित कर रहे हैं। चित्रकार का यह चित्र बहुत ही मुग्धकारी है, उसने इस चित्राङ्कन में मानो अपनी कलम ही तोड़ डाली है।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में बड़ा ही सुन्दर काव्यात्मक चित्रण किया है। इस गद्य में पद्य का सा आनन्द है।

(१०) तुझे कुछ खींचना·········दिया जायेगा।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'चित्राङ्कन' नामक गद्य काव्य से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने एक सघन वन-खण्ड का चित्र अंकित किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि हे चित्रकार, क्या तुम एक सघन वनखण्ड का चित्राङ्कन कर सकते हो, जिसमें पहाड़ी हो, जहाँ निर्मल नदी प्रवाहित हो, उसके तट पर ऐसे वृक्ष हों, जो झुक-झुककर जल को स्पर्श करते हों, एक तरफ गायें पानी पी रही हों, दूसरी तरफ मृगशावक हरी-हरी दूर्वा चर रहे हों। प्रातःकालीन वेला का चित्र हो, पूर्वी आकाश लालिमायुक्त हो। इधर-उधर पक्षी उड़ते हुए दृष्टिगत हो रहे हों। नदी में ऋषि, मुनि तथा ब्रह्मचारी स्नान-ध्यान, सन्ध्या तथा पूजा-पाठ कर रहे हों। नदी के तट पर विद्यार्थी कहीं स्वाध्याय करते हों, कहीं ब्राह्मण हवन कर रहे हों, सभी के मुखमण्डल तेजो दीप्त हो, ऋषि-मुनि शान्त चित्त सानन्द हों। सर्वत्र विश्व प्रेम का साम्राज्य हो। चित्रकार के लिए ऐसा चित्र पुरस्कार योग्य है, वह प्रधान पुरस्कार पाने का अधिकारी है।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में काव्यात्मक चमत्कार दिखलाया है। इस गद्य में पद्य के समान ही आनन्द आता है।

(११) एक तो दिन भर·········हमारी रक्षा करो।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित 'बाघ से भिड़न्त'

नामक आखेटात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। विद्वान् लेखक ने इसके भीतर उस समय का वर्णन किया है, जिस समय इनके घर पर इनके मित्र के साथ टिहरी के एक वृद्ध सज्जन उपस्थित हुए थे, जिनकी दो गायों को बाघ खा गया था। वे सहायतार्थ वहाँ आये थे।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि उस समय मैं बहुत ही थका हुआ था, जाड़े का समय था, बाहर जाने की हिम्मत नहीं करती थी, परन्तु उस वृद्ध की आँखों में एक ऐसी तीव्र भावना थी, जो मुझे उनकी सहायता के लिए प्रेरित कर रही थी। उन नेत्रों में एक ऐसा आकर्षण था, एक ऐसा कंपन था, जो निस्तब्ध एवं निःशब्द मुझे बाध्य कर रहा था कि यदि तुम हृदयहीन नहीं हो, सहृदय हो, तो उस बाघ को मार कर हमारी रक्षा करो।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में मानवता का चित्र अंकित किया है। विपत्तिग्रस्त की सहायता करना मानव धर्म है।

(१२) वेद कालीन·········परतन्त्र ही रही।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न' नामक विचारात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। विदुषी लेखिका ने इसके भीतर वैदिक कालीन समाज में स्त्री के स्वातन्त्र्य पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—विदुषी लेखिका का कथन है कि वैदिक युग में समाज ने स्त्रियों के विवाह को बहुत ही महत्त्व दिया। स्त्री, सन्तान की जन्मदात्री माँ बनी, इसका अपूर्व गौरव बढ़ा। वह पति के साथ रहकर धर्म-कर्म में सह धर्मिणी बनी। गृह की व्यवस्था का पूर्ण भार सम्भालने के कारण यह गृहिणी कहलायी और सुचारुरूप से इस पद को सम्भालते हुए प्रतिष्ठित हुई। वह धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से उन्नतिशील बनी, परन्तु आर्थिक दृष्टि से नितान्त परतन्त्र ही रही।

काव्य-सौष्ठव—विदुषी लेखिका ने इन पंक्तियों में वैदिक कालीन युग में स्त्रियों की दशा का यथार्थ वर्णन किया है।

(१३) जीवन में विकास·········आदर न दे सका।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न' नामक विचारात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विदुषी लेखिका ने जीवन-संगिनी स्त्री की उपेक्षा पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या—विदुषी लेखिका का कथन है कि अपने जीवन को विकसित करने के लिए दूसरों की सहायता लेना बुरा नहीं है, परन्तु किसी को सहायता देने के लिए अपने भीतर क्षमता रखते हुए भी न देना बुरा ही नहीं, बल्कि अभिशाप है। स्त्री-पुरुष दोनों सहयात्री हैं, साथ-साथ चलने वाले हैं। दोनों के परस्पर सहयोग बिना गृहस्थाश्रम का विकास असम्भव है। बोझ के समान स्त्री भार नहीं है, लेकिन कोई-कोई भारतीय उसे भार समझते हैं। स्त्री आदरणीय है, सम्माननीय है। वह प्रत्येक दशा में सुख का साधन है। अतः उसकी अवहेलना कदापि नहीं करनी चाहिए।

काव्य-सौष्ठव—विदुषी लेखिका ने इन पंक्तियों में स्त्रियों को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। वे सम्माननीय हैं, उपेक्षणीय नहीं। कहा गया है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'। जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता रमण करते हैं।

(१४) लीलामय की महानदी·········समर्थ न होता।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीकमलापति त्रिपाठी द्वारा लिखित 'बन्दी पिता का पत्र' नामक पत्रात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने उस समय का वर्णन किया है, जिस समय वे नैनी सेण्ट्रल जेल में थे। वहीं से अपने प्रिय पुत्र लाल जी को होली के अवसर पर पत्र लिखा था।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि प्रिय लालजी, लीलामय भगवान् की माया प्रकृति ने मनुष्य की सृष्टि एक विचित्र प्राणी के रूप में बनाया है। वह सुख-दुःख दोनों स्थितियों में एक समान रहता है। जैसी परिस्थिति उसके समक्ष उपस्थित होती है, वह अपने को उसी के अनुकूल बना लेता है। उसका हृदय अगाध सागर के समान है, जिसमें कला, सन्तुलन करने की क्षमता तथा धैर्यपूर्वक रहने की क्षमता सभी विद्यमान है। यदि मनुष्य में ये समस्त गुण नहीं होते, तो वह क्षणमात्र भी जीवन धारण करने में समर्थ नहीं रहता।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में अपने जीवन में अनुभूत तथ्यों का यथार्थ चित्रण किया है।

(१५) नेपाल, शैव शाक्त·········बाँधे हुए हैं।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण डॉ॰ नगेन्द्र द्वारा लिखित 'काठमाण्डू दर्शन' नामक यात्रात्मक निबन्ध से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान्

लेखक ने उस समय का वर्णन किया है, जिस समय वे काठमाण्डू—नेपाल दर्शन हेतु गये थे।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि नेपाल की संस्कृति सराहनीय है। यहाँ शिव उपासक शैव, शक्ति उपासक शाक्त तथा बुद्ध उपासक बौद्ध सभी धर्मावलम्वियों का स्थान है। वर्तमान समय में एक मात्र वही हिन्दू राज्य है, उसमें भारत के समान न तो धर्म निरपेक्षता है, न पाकिस्तान के समान धर्म प्रतिबद्धता, बल्कि वह हिन्दू धर्मावलम्वी है। यही कारण है कि अनेक शताब्दियों से वह एक ओर भगवान् पशुपतिनाथ और दूसरी ओर तथागत भगवान् बुद्ध के वरदानों का अभिलाषी बनकर उनकी उपासना में लीन है। आज भारत से हिन्दू संस्कृति प्रायः लुप्त होती चली जा रही है, परन्तु वहाँ वर्तमान है। नेपाल एवं भारत दोनों एक दूसरे के बिल्कुल निकट हैं, दोनों का सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण है, दोनों की संस्कृति एवं धर्म चिरकाल समान रूप से अवस्थित हैं।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में नेपाल की संस्कृति का अच्छा चित्रण किया है। संस्कृति के कारण ही कोई देश महान् बनता है।

(१६) युद्ध की संघर्षमयी·········सोचता ही रह जाता।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण श्रीकन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' द्वारा लिखित 'क्यों रो रहे हो'? नामक लघु कथा से अवतरित किया गया है। इसके भीतर विद्वान् लेखक ने 'कलाकार का अपनी कलाओं के प्रति तन्मयता एवं हार्दिक प्रेम का वर्णन किया है।

व्याख्या—विद्वान् लेखक का कथन है कि कलाकार ने एक मूर्ति की प्रतिमा बनायी। इसी बीच युद्ध छिड़ गया और वह सिपाही के वेष में रणभूमि में पहुँच गया, वहाँ जब कभी उसे अवकाश मिलता, वह उस प्रतिमा के प्रेम प्रवाह में डूब जाता। वह सोचता कि अभी उस प्रतिमा में थोड़ा और निखार लाना है, जिससे वह देवमूर्ति सभी के आकर्षण का केन्द्र बन जाय। अभी कंधों, मस्तक तथा वक्षस्थल में थोड़ा-सा चिकनाहट लाना शेष रह गया है, युद्ध समाप्त होते ही यह कार्य पूर्ण हो जायेगा। वह कलाकार इस प्रकार सोचते-सोचते उस प्रतिमा के रूपरंग में तल्लीन हो जाता।

काव्य-सौष्ठव—विद्वान् लेखक ने इन पंक्तियों में कलाकार की तन्मयता का अच्छा चित्रण किया है।

नाट्ययुग

नाटकों का सारांश या कथावस्तु

(१) जानकी मंगल

श्री शीतला प्रसाद त्रिपाठी द्वारा लिखित नाटकों में 'जानकी मंगल' नामक एकांकी नाटक का विशिष्ट स्थान है। इस नाटक की कथावस्तु का आधार गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस का बालकाण्ड है। इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि नान्दीपाठ के समाप्त होने पर सूत्रधार नेपथ्य की ओर देखकर नटी को पुकारता है और उसके उपस्थित होने पर नाटक देखने के लिए समुपस्थित महानुभावों के मनोरञ्जन हेतु किसी नाटक का मञ्चन करने के लिए आग्रह करता है। नटी 'जानकी मंगल' का अभिनय करना चाहती है। इसी बीच नेपथ्य में कोलाहल होता है, जिसे सुनकर सूत्रधार कहता है कि आज जनकपुर में राम और लक्ष्मण अपने गुरु विश्वामित्र के साथ धनुषयज्ञ देखने आये हैं। अतः जनकपुरवासी नर और नारी उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़े हैं। चलो, हमलोग भी उन दोनों राजकुमारों का दर्शन करके अपने नेत्र को सफल बनावें। गुरु की आज्ञा से राम-लक्ष्मण का पुष्पवाटिका में प्रवेश होता है और दोनों भाई वहाँ के मालियों से अनुमति लेकर पुष्प चयन करने लगते हैं। इसी बीच जनककुमारी जानकी माता की आज्ञा से अपनी सखियों के साथ गौरीपूजन के लिए उसी पुष्पवाटिका में जाती हैं। वहाँ राम तथा जानकी दोनों एक दूसरे के रूप को देखकर मोहित हो जाते हैं। अन्त में सीता गौरी के मन्दिर में जाकर प्रेमपूर्वक उनकी पूजा करती है, जिससे प्रसन्न होकर वे जानकी को मनोनुकूल वर प्राप्त करने का आशीर्वाद देती हैं। तदनन्तर जानकी अपनी सखियों के साथ अपनी माता के भवन में और राम-लक्ष्मण अपने गुरु के पास प्रस्थान करते हैं।

रंग-भूमि में देश-देश के नरेश आये हुए हैं। लंकापति रावण तथा पातालपुरी का राजा बाणासुर भी वहाँ आते हैं। परन्तु दोनों धनुष को देख शिर अवनत कर अपने-अपने राज्य में लौट जाते हैं। तत्पश्चात् गुरुजी के साथ

नोट — इसके बाद पृष्ठ ३२(क) से लेकर ३२(छ) का मैटर क्रमशः पढ़ा जाये। तत्पश्चात् पृष्ठ ३३ से पृष्ठों के क्रम व्यवस्थित हैं।

राम-लक्ष्मण का प्रवेश होता है। सभी राजा धनुष तोड़ने की इच्छा से धनुष के निकट जाते हैं, पर उसे तोड़ना तो दूर रहा, वे तिल भर भी हिला नहीं सके। इसी बीच दुःखित एवं क्रोधित होकर महाराज जनक जी कहते हैं कि मालूम होता है कि 'पृथ्वी वीरों से खाली है, कोई तिल भर भी धनुष को नहीं उठा सका।' जनकजी की बात सुनकर लक्ष्मण जी क्रोधित हो जाते हैं, परन्तु गुरुजी उन्हें समझा कर शान्त कर देते हैं। तदनन्तर गुरु की आज्ञा से राम धनुभंग करते हैं, जिससे सर्वत्र प्रसन्नता छा जाती है। महाराज जनकजी के पुरोहित सदानन्दजी सीता को आज्ञा देते हैं कि वे अपनी सहेलियों के साथ राम के निकट जाकर उन्हें जयमाला पहनावें।

इसी बीच धनुभंग के शब्द को सुनकर परशुरामजी का आगमन होता है। उन्हें देखकर सभी दण्ड प्रणाम करते हैं। जनक जी भी शिर नवाते हैं और सीता से भी प्रणाम कराते हैं। गुरु विश्वामित्रजी आदरपूर्वक मिलते हैं और राम-लक्ष्मण दोनों भाई को उनके चरणों में शिर नवाने को कहते हैं।

भगवान् शिव के धनुप को भंग हुए देखकर परशुरामजी जनकजी से पूछते हैं कि इस धनुष को किसने भंग किया? जनकजी तो मौन रहते हैं, परन्तु लक्ष्मणजी उनके प्रश्न का उत्तर देते हैं। दोनों में वाद-विवाद होता है। अन्त में विनम्रतापूर्वक राम उत्तर देते हैं कि आपके इस सेवक ने ही धनुर्भंग किया है। राम के शील स्वभाव से परशुराम जी प्रभावित होते हैं और उनकी परीक्षा हेतु अपना धनुष देते हैं, जिस पर राम प्रत्यञ्चा चढ़ा देते हैं, जिसे देखकर परशुराम को पूर्ण विश्वास हो जाता है कि अब रामावतार हो गया। अतः वे भगवान् की स्तुति करके तपस्या हेतु वन में चले जाते हैं।

प्रस्तुत नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देश-काल, भाषा-शैली, उद्देश्य तथा अभिनय एकांकी नाटकों के समस्त तत्त्वों से युक्त एक प्रशस्त नाटक है।

(२) सत्य हरिश्चन्द्र

श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित एकांकी नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र' नामक नाटक का विशेष महत्त्व है। इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि मंगलाचरण के पश्चात् सूत्रधार मंच पर प्रवेश करके नटी को बुलाता है और दोनों 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के अभिनय का निश्चय कर प्रस्थान करते हैं।

राजा हरिश्चन्द्र अपने को विक्रय करके ब्राह्मण विश्वामित्र को दक्षिणा

देने हेतु अपनी पत्नी शैव्या तथा प्रिय पुत्र रोहित के साथ काशी पहुँच कर उसकी प्रशंसा करते हैं—'यह काशी धन्य है।'

पुनः वे नगर की बाजार में खड़े होकर कहते हैं—अरे सुनो भाई, सेठ, साहुकार, महाजन, दुकानदारों—हम किसी कारणवश अपने को बेचना चाहते हैं।

वे इसी बात को बार-बार दुहराते हैं और लोगों के पूछने पर वे कहते हैं कि 'जो मुझे खरीद लेगा, मैं उसकी सभी बातों को मानूंगा, वह जो कहेगा, वही करूँगा।'

इसी समय नेपथ्य से हरिश्चन्द्र की पत्नी शैव्या की आवाज आती है कि अपने पति से पूर्व मैं बिकना चाहती हूँ।

अन्ततोगत्वा एक ब्राह्मण गृह-कार्य के लिए शैव्या को खरीद लेता है और रोहित भी माता के साथ चला जाता है।

इसी बीच विश्वामित्र का आगमन होता है और वे अपनी दक्षिणा की माँग करते हैं। राजा हरिश्चन्द्र कहते हैं कि विप्रवर ! आपकी आधी दक्षिणा तैयार है, ग्रहण कीजिए। परन्तु विश्वामित्र जी कहते हैं कि 'मैं आधी लेकर क्या करूँगा, यदि देना हो तो पूरी दक्षिणा उपस्थित करो'।

उसी समय चाण्डाल वेष में धर्म उपस्थित होकर राजा हरिश्चन्द्र को खरीद लेते हैं और विश्वामित्र अपनी पूरी दक्षिणा प्राप्त कर अपने आश्रम को चले जाते हैं।

इधर चाण्डालराज की आज्ञा से राजा हरिश्चन्द्र श्मशान घाट पर कर रूप में कफन लेने की नौकरी प्रारम्भ कर देते हैं। वे कम्बल ओढ़े हुए हाथ में लाठी लिए हुए घाट पर इधर-उधर टहलते हुए कहते हैं कि 'कोई भी व्यक्ति बिना मुझसे कहे, बिना कर-कफन दिये दाह संस्कार न करें'।

उसी समय पुष्प वृष्टि होती है। राजा हरिश्चन्द्र सोचते हैं कि मालूम होता है कि किसी पुण्यात्मा का शव आया है। तब तक रात्रि की बेला में रोती कलपती हुई शैव्या अपने प्रिय पुत्र रोहित का शव लेकर पहुँचती है। राजा हरिश्चन्द्र रात्रि के गहन अन्धकार में पहले तो अपनी पत्नी शैव्या को नहीं पहचान सके, परन्तु बातचीत के पश्चात् ज्ञान होने पर व्यथित हो जाते हैं—पत्नी बिक चुकी है, स्वयं चाण्डाल के दास बन गये हैं, एकमात्र प्यारा पुत्र भी पञ्चत्व को प्राप्त हो गया, फिर भी धर्मसंकट में पड़े हुए साहस तथा

धैर्य से कर-कफन माँगते हैं। जिससे आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगती है और स्वयं धन्यवाद देने के लिए भगवान् उपस्थित होते हैं। रोहित उठकर बैठ जाता है, पुनः पुष्प-वृष्टि होती है। यह देखकर हरिश्चन्द्र तथा शैव्या दोनों का हृदय आश्चर्य, प्रेम, करुणा और आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है, दोनों भगवान् के चरणों को स्पर्श करते हैं।

प्रस्तुत नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा-शैली, उद्देश्य तथा अभिनय एकांकी नाटकों के समस्त तत्त्वों से युक्त एक प्रशस्त नाटक है।

इस नाटक की एक उल्लेख्य विशेषता यह है कि राजा हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व में नाटककार एवं कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वयं अपनी दानशीलता एवं सत्यनिष्ठा का गुम्फन किया है—

जो गुन नृप हरिश्चन्द्र में जनहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिश्चन्द्र में लखहु प्रत्यक्ष सुजान।।

(३) यम का न्याय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित एकांकी नाटकों में 'यम का न्याय' एक प्रशस्त नाटक है। प्रस्तुत नाटक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नामक नाटक का एक अंश है। विद्वान् लेखक ने अपने 'यम का न्याय' नामक नाटक के आरम्भ में यमपुरी का एक दृश्य उपस्थित किया है, जहाँ यमराज और चित्रगुप्त बैठे हैं। चित्रगुप्त अपना रोजनामचा खोलकर मृत्यु लोक के जीवों का धर्म-अधर्म देखते हैं और उनके कर्म के अनुसार अपना निर्णय देते हैं और यमराज उन्हें दण्ड देते हैं। इसी क्रम में यमदूत सर्वप्रथम एक राजा को उपस्थित करते हैं। चित्रगुप्त अपना रोजनामचा देखकर कहते हैं कि इसने पण्डितों को मिलाकर सारी व्यवस्था अपने अनुकूल बनाकर दुराचार को धर्म का रूप दिया है। यह सुनकर वह राजा कहता है कि मैंने कोई अधर्म या पाप नहीं किया है। मैंने मांस अवश्य खाया है, परन्तु वह देवताओं को चढ़ाकर खाया है।

यमराज उस पर क्रोधित होकर अपने दूत से कहते हैं कि 'इस राजा को कोड़ों से मारते हुए अन्ध मिश्रित नरक में ले जाओ।'

राजा के बाद पुरोहित को उपस्थित किया जाता है। चित्रगुप्त अपना रोजनामचा देखकर कहते हैं कि इसने यज्ञोपवीत केवल दिखलाने के लिए

धारण किया है। इसने सदैव मद्य-मांस का सेवन किया है। यह सुनकर पुरोहित कहता है कि मैंने कोई पाप नहीं किया है, वेदों तथा पुराणों में मद्य-मांस सेवन के अनेक उदाहरण हैं।

यमराज क्रोधित होकर दूत से कोड़े से मारने को कहते हैं। तब पुनः वह पुरोहित कहता है कि मांस खाना बुरा है, तो दूध क्यों पीते हैं, दूध भी तो मांस है। मैंने जगदम्बा को बकरे की बलि देकर मांस खाया है।

यमराज कहते हैं—'जगदम्बा क्यों कहता है, अपनी अम्बा क्यों नहीं कहता? बकरे की बलि क्यों कहता है, सिंह की बलि क्यों नहीं कहता? यमराज अपने दूत को पुनः आदेश देते हैं कि 'इसे मारते हुए सुचिमुख नामक नरक में ले जाओ।'

इसके बाद मंत्री उपस्थित होता है। चित्रगुप्त रोजनामचा देखकर कहते हैं कि इसने सदैव स्वहित चिन्तन किया है। राजा तथा प्रजा के हित के विषय में कभी नहीं सोचा है।

यह सुनकर मंत्री कहता है कि मुझे पुनः उस राज्य में जाने का अवसर दें। मैंने जो धन संचित किया है। वह सभी मैं आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा।

उसकी बात सुनकर यमराज उसे डाँटते हैं और दूत से कहते हैं कि 'इसे पीटते हुए कुम्भीपाक नरक में ले जाओ।'

इसके पश्चात् गण्डकी दास की उपस्थिति होती है।

चित्रगुप्त इनका रोजनामचा देखकर कहते हैं कि इसने महात्मा का वेष बनाकर लोगों को ठगा है। मन्दिर में दर्शनार्थ आने वाली स्त्रियों पर इसने सदैव कुदृष्टि रखी है।

यह सुनकर गण्डकी दास कहता है कि मैंने कुछ नहीं किया, सब भगवान् कराता है। इसमें मेरा कोई अपराध नहीं, कोई पाप नहीं। इसकी बात सुनकर यमराज दूत को आदेश देते हैं कि 'इसे कोड़े मारते हुए नरक में ले जाओ।'

जब इन चारों को यमराज के दूत कोड़े से मारते हुए नरक में ले जाते हैं, तो ये चिल्लाते हुए कहते हैं—

'अरे, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।
हाय रे अग्निष्टोमी पशुमालभेत् ॥

अरे बापं रे सौत्रामस्यां सुरा पिवेत् ।
भैया रे श्रौत्र मे सुधाभिः' ।।

अन्त में शैव तथा वैष्णव उपस्थित किये जाते हैं। चित्रगुप्त इन दोनों पर प्रसन्न हैं। यमराज कहते हैं कि आप दोनों की भक्ति प्रसंशनीय है। अतः शैव को कैलाश तथा वैष्णव को वैकुण्ठ प्राप्त है। दोनों यमराज को हाथ जोड़कर प्रस्थान करते हैं।

विद्वान् लेखक ने इस नाटक में मांस-भक्षण एवं मदिरा-सेवन की निन्दा है। पाखण्डी लोग देवी-देवताओं को बकरें की वलि देकर तथा मदिरा चढ़ा कर प्रसाद के रूप में मांस तथा मदिरा का सेवन करते हैं और शास्त्र की दुहाई देते हैं, जो अनुचित है, अधर्म है। इसी प्रकार कुत्सित कर्म करके उसे अपने ऊपर न लेकर भगवान् की इच्छा मानते हैं, जो महान् अनर्थ का कारण है। समाज के ऐसे पाखण्डियों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

विद्वान् लेखक द्वारा प्रस्तुत नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण देश-काल, भाषा-शैली, उद्देश्य तथा अभिनय एकांकी नाटकों के समस्त तत्त्वों से पूर्ण एक प्रशस्त नाटक है।

(४) अंधेर नगरी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित एकांकी नाटकों में 'अंधेर नगरी' नामक नाटक का विशिष्ट स्थान है। इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि एक महन्तजी अपने दो शिष्यों गोवर्द्धन दास तथा नारायण दास के साथ यात्रा करते हुए एक नगर में पहुँचते हैं। वे गोवर्द्धन दास से कहते हैं कि बेटा, यह बड़ा भव्य नगर है, जाओ भिक्षा ले आओ। गुरु के कथनानुसार वह उस नगर में भिक्षा में सात पैसे पाता है और देखता है कि यहाँ सभी चीजें 'टके सेर' बिक रही हैं। वह बहुत ही प्रसन्न होकर साढ़े तीन सेर मिठाई खरीद कर गुरुजी के निकट उपस्थित होता है और उनके समक्ष मिठाइयाँ रखकर उनसे निवेदन करता है कि गुरुजी यहाँ सभी चीजें 'टके सेर' बिक रही हैं। अतः मेरा विचार है कि इधर-उधर घूमने के बजाय यहीं आनन्द से रहा जाय।

गुरुजी पूछते हैं—बेटा, इस नगरी का नाम क्या है?

गोवर्द्धन दास—अंधेर नगरी।

गुरुजी—यहाँ के राजा का नाम?

गोवर्द्धन दास—चौपट राजा।

गुरुजी कहते हैं कि बेटा, ऐसे नगर में रहना उचित नहीं है, जहाँ विवेक न हो, किसी दिन विपत्ति आ सकती है। गुरु की बातों का गोवर्द्धन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह हठपूर्वक रह जाता है और गुरुजी नारायण को साथ लिए अन्यत्र चले जाते हैं।

एक दिन राजा चौपट का दरबार लगा हुआ है, मंत्री आदि सब बैठे हुए हैं। उसी समय एक व्यक्ति आकर राजा से निवेदन करता है कि कल्लू की दीवार के गिर जाने के कारण मेरी बकरी दब कर मर गई।

राजा नौकर को आज्ञा देते हैं कि 'वह दीवार को पकड़ कर ले आवें।'

मंत्री कहता है कि 'राजन् दीवार पकड़ कर नहीं आ सकती। अतः कल्लू को बुलवाया जाय।'

राजा के कथनानुसार कल्लू बुलवाया जाता है। वह कहता है कि महाराज, दीवार मैंने नहीं बल्कि कारीगर ने बनायी है। कारीगर बुलवाया गया। वह कहता है कि महाराज, मेरा दोष नहीं, दोष चूने-सुरखी वाले का है।

चूना वाला बुलवाया गया। वह कहता है कि महाराज, भिस्ती ने चूने में अधिक पानी डाल दिया था। अतः उसका दोष है। भिस्ती बुलवाया गया। वह कहता है कि कसाई ने मसक बड़ा बना दिया था। अतः उसमें पानी अधिक आ गया। मेरा दोष नहीं, कसाई का दोष है।

कसाई बुलवाया गया। वह कहता है कि महाराज, जिस समय मैं मसक के लिए भेंड़ खरीद रहा था, उसी समय कोतवाल साहब की सवारी आ रही थी। अतः भीड़ के कारण मैं छोटी-बड़ी का ख्याल नहीं कर सका, बड़ी भेंड़ खरीद ली, जिससे मसक बड़ा बन गया। अतः मेरा दोष नहीं, कोतवाल साहब का दोष है।

कोतवाल साहब बुलवाये गये और चौपट राजा ने उन्हें फांसी की सजा सुना दी। राजा के कथनानुसार सिपाही कोतवाल साहब को लेकर फांसी के स्थान पर जाते हैं, परन्तु उनकी गर्दन पतली होने के कारण फांसी का फ़न्दा ढीला पड़ जाता है, जिसे सिपाही राजा से निवेदन करते हैं। राजा कहते हैं कि कोतवाल को छोड़ दो, किसी मोटे आदमी को पकड़ कर ले आओ, जिसकी गर्दन मोटी हो।

राजा के सिपाही मोटे आदमी की खोज करते हुए गोवर्द्धन दास को पकड़ लेते हैं और उनके पूछने पर कहते हैं कि राजा की आज्ञा है। अब तुम्हें फांसी के फन्दे पर लटकाया जायेगा, क्योंकि तुम्हारी गर्दन मोटी है। गोवर्द्धन दास को इस समय गुरुजी की बातों की याद आती है और वह मन-ही-मन उन्हें स्मरण करता है। जब वह फाँसी के तख्ते के पास पहुँचता है, उसी समय नारायण के साथ गुरुजी दिखाई देते हैं। गोवर्द्धनदास चिल्लाने लगता है। गुरुजी उसके निकट पहुँच कर उसके कानों में कुछ कहते हैं और दोनों गुरु-चेला उस फाँसी पर चढ़ने के लिए परस्पर झगड़ा करने लगते हैं, जिससे राजा चौपट को बुलाना पड़ता है। राजा पूछते हैं कि तुम दोनों इस फाँसी पर चढ़ने के लिए परस्पर क्यों कलह कर रहे हो ? राजा के वचनों को सुनकर गुरुजी कहते हैं कि 'महाराज ! इस समय ऐसा मुहूर्त है कि जो भी फाँसी पर चढ़ेगा, वह सीधे वैकुण्ठ जायेगा।'

राजा कहते हैं कि 'जब ऐसी बात है, तो फाँसी पर कोई नहीं चढ़ेगा, मैं चढ़ूंगा'।

चौपट राजा फाँसी पर चढ़ जाते हैं और उनका 'राम नाम सत्य है' हो जाता है।

विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देश-काल, भाषा-शैली तथा अभिनय आदि एकांकी नाटकों के समस्त तत्त्वों से युक्त एक प्रशस्त नाटक है।

(५) चन्द्रावली

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित नाटकों में 'चन्द्रावली' नामक नाटिका का विशेष महत्त्व है। नान्दीपाठ के अनन्तर रंगमंच पर सर्वप्रथम शुकदेव जी का दर्शन होता है, जो गोपियों के प्रेम की चर्चा करते हैं। उसी समय देवर्षि नारदजी का भी आगमन होता है, जो वृन्दावन से चन्द्रावली के अलौकिक प्रेम से प्रभावित होकर कहते हैं कि गोपियों में श्रीचन्द्रावलीजी के प्रेम की चर्चा सर्वत्र हो रही है। वे श्रीकृष्ण में इस प्रकार लीन हो गई हैं, जैसे जल और दूध आपस में मिल जाते हैं। इस सूचना के बाद दोनों चले जाते हैं। तत्पश्चात् एक तालाब के किनारे उद्यान में झूले का दृश्य सामने आता है। चन्द्रावली, माधवी, काममञ्जरी, विलासिनी आदि सखियाँ एक स्थान पर बैठी हैं, दूसरी ओर चन्द्रकान्ता, वल्लभा, भामा झूला झूल रही हैं। तीसरी ओर

कामिनी तथा माधुरी दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर घूमती हुई बातें कर रही हैं। कामिनी कहती है कि 'सखी, वरसात का यह मौसम कितना आनन्द-दायक है। चारों ओर हरियाली छायी है। इस समय चन्द्रावली की दशा बहुत बुरी है। उसके ऊपर कड़े पहरे हैं। वेचारी श्रीकृष्ण की एक झलक भी नहीं पा सकती।'

दूसरी तरफ माधवी चन्द्रावली से कहती है कि 'सखी, देखो श्यामला का दर्शन कितना सुहावना लग रहा है'।

सखी की बात सुनकर चन्द्रावली कहती है—'क्यों न हो, वह प्यारे की प्यारी जो है'।

इतना कहते के बाद चन्द्रावली स्वतः कहती है—'प्यारे, तुम्हारी सब दीनदयालुता कहाँ गई? प्यारे, मुझे जल्दी इस संसार से छुड़ाओ, अब सहा नहीं जाता'। इतना कहकर वह रोने लगती है। तत्पश्चात् सभी सखियाँ चन्द्रावली से झूला झूलने को कहती है तथा श्रीकृष्ण से चन्द्रावली के मिलन का उपाय सोचने लगती हैं।

सखियों की बात सुनकर चन्द्रावली कहती है कि 'मैं झूला क्या झूलूं! मेरी आँखें तो स्वयं झूला झूलती रहती हैं। जब मैं श्याम रंग में रंगे बादलों को देखती हूँ, तो मेरा मन बेहाल हो जाता है। दिल पर विरह की घटा छा जाती है। मोर की आवाज सुनते ही वंशी-ध्वनि की याद आने लगती है। यह वर्षा भले ही किसी की सुखदायिनी हो, पर मुझे तो यह कष्ट ही दे रही हैं'।

चन्द्रावली की विरह दशा देखकर माधवी घर चलने के लिए प्रस्ताव करती है और काममञ्जरी इस बात का समर्थन करती है। तदनन्तर सभी सखियाँ घर के लिए प्रस्थान करती हैं। विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह नाटिका कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा-शैली, उद्देश्य तथा अभिनय आदि एकांकी के समस्त तत्त्वों से युक्त एक प्रशस्त नाटिका है।

(६) सतीप्रताप

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित 'सतीप्रताप' नामक नाटक एक अपूर्व रचना है, जो लेखक के असामयिक मृत्यु के कारण पूर्ण न हो सका; फिर भी इस नाटक में जितना उपलब्ध है, अपने में पूर्ण है। यह एक पौराणिक कथा पर आधारित होते हुए भी साहित्यिकता से परिपूर्ण है। इस नाटक के आरम्भ में

हम देखते हैं कि रंगमंच पर तीन अप्सराएँ गान कर रही हैं। एक अप्सरा रुक्मिणी का यश-गान करती है, दूसरी पतिव्रता, सीता, सावित्री, एवं अनसूया का गुणगान करती है और तीसरी प्रकृति-सौन्दर्य का गुणगान करती है। तत्पश्चात् हम देखते हैं कि द्युमत्सेन-पुत्र सत्यवान् सोचता है कि ये मधुर गान कहाँ से आ रहा है ? इसी बीच सखियाँ सामने आ जाती हैं। सावित्री और सत्यवान् दोनों एक-दूसरे को देखते हैं। सखियाँ मन में सोचती हैं कि यदि कहीं यह तपस्वी राजकुमार होता, तो हमारी राजकुमारी के अनुकूल होता। सखियों के निकट आने पर सत्यवान् तीनों से आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने को कहता है, पर सावित्री अपने माँ-बाप से पूछ कर दूसरे दिन आने के लिए स्वीकार करती है और तीनों सखियाँ घर चली जाती हैं। दूसरे दिन सावित्री अपनी सखियों की प्रतीक्षा करने लगती है कि एक प्रहर दिन बीत गया, अभी सखियाँ नहीं आईं। फिर मन में सोचती है कि यदि मेरा प्रेम सत्य होगा, तो मेरे प्रियतम मुझे अवश्य मिलेंगे। इसी बीच मधुर गायन करती हुई सखियाँ उपस्थित होती हैं। सावित्री का मन प्रसन्न हो जाता है। इधर सत्यवान् के पिता द्युमत्सेन अपने आश्रम में बैठे हैं, उसी समय वीणा बजाते हुए देवर्षि नारदजी प्रवेश करते हैं। द्युमत्सेन उन्हें प्रणाम करके सादर आसन पर बैठाते हैं। देवर्षि कहते हैं कि मैंने तुम्हारे पुत्र सत्यवान् का विवाह सावित्री से निश्चित कर दिया है। इसी से उसका कल्याण है। इतना कहकर देवर्षि नारद वीणा बजाते हुए वहाँ से प्रस्थान करते हैं।

सखेद कहना पड़ता है कि विद्वान् लेखक द्वारा लिखित यह नाटक अधूरा ही रह गया, अन्यथा यह एक उच्चकोटि का नाटक होता।

संस्कृत नाटक और नाटककार

(नाटकों का सारांश अथवा कथावस्तु)

(१) स्वप्नवासवदत्तम्

श्रीभास द्वारा लिखित नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' नामक नाटक नायिका-प्रधान प्रसिद्ध एवं प्रशस्त नाटक है। इसकी कथावस्तु ६ अंकों में आवद्ध है। नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि उज्जयिनी के महाराजा उदयन वीणा-वादन में बड़े ही निपुण थे। उनकी वीणा का स्वर सुनकर जंगली हाथी भी वशीभूत हो जाते थे। एक दिन वे जंगल में आखेट के लिए गये और वहीं अवन्ती के राजा चण्डसेन प्रद्योत के सैनिकों ने इन्हें बन्दी वना लिया और वे राजा की आज्ञा से उनकी कन्या वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने लगे। शिक्षण काल में ही ये दोनों एक-दूसरे के रूप-लावण्य पर मोहित हो गये। वासवदत्ता के पिता ने अपनी कन्या का विवाह उदयन से करने का निश्चय किया, परन्तु ये दोनों प्रेम-पाश में ऐसे आवद्ध हो गये थे कि समय की प्रतीक्षा न करके अवसर पाते ही भाग कर उज्जयिनी चले आये और वहीं विधिपूर्वक विवाह कर लिया। दोनों का जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगा।

महाराजा उदयन के प्रधानमन्त्री का नाम यौगन्धरायण था, जो बहुत ही विश्वस्त एवं दूरदर्शी था। एक दिन ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि महाराजा उदयन का विवाह मगधराज की बहिन पद्मावती के साथ होगा। इधर महाराजा उदयन वासवदत्ता के प्रेम में इतने विभोर हो गये थे कि वे प्रिय पत्नी वासवदत्ता के रहते दूसरा विवाह क्यों करते? लेकिन मन्त्री ने सोचा कि किसी उपाय से यदि यह विवाह सम्पन्न हो जाय, तो राज्य का बहुत कल्याण होगा। एक दिन मन्त्री ने वासवदत्ता से ज्योतिषियों की भविष्यवाणी तथा राज्यहित दोनों बातों को समझा दिया। वासवदत्ता बड़ी ही चतुर थी। अतः राज्यहित एवं स्वामी के कल्याण की कामना से मन्त्री की बात मान गई।

एक दिन महाराजा उदयन वासवदत्ता को साथ लेकर मन्त्रियों सहित

आखेट को गये। प्रधानमन्त्री यौगन्धरायण और वासवदत्ता दोनों लावणक ग्राम में वनी एक पर्णकुटी में थे। चतुर मन्त्री ने वासवदत्ता को भलीभाँति समझा कर वासवदत्ता को उस कुटी से वाहर निकाल कर उसमें आग लगवा दी और यह प्रचार करा दिया कि महारानी वासवदत्ता उसी में जल गई तथा मन्त्री यौगन्धरायण भी उसे वचाने में स्वाहा हो गया। जव महाराजा उदयन मृगया से लौटकर आये और यह समाचार सुना तो वेहोश हो गये। जव होश आया तो उन्होंने रोते हुए अपना भी प्राण त्याग देना चाहा, परन्तु मन्त्री रुमण्वान् ने उन्हें ऐसा करने से मना किया।

इधर यौगन्धरायण ने संन्यासी का रूप बना लिया और वासवदत्ता को लेकर मगध के एक तपोवन में पहुँचा, जहाँ पर राजकुमारी पद्मावती माता के दर्शन के निमित्त आने वाली थी। यह जानकर मन्त्री को बड़ी प्रसन्नता हुई।

राजकुमारी ने अपनी कंचुकी से यह सार्वजनिक घोषणा कराई कि 'जिसे किसी वस्तु की याचना करनी हो, वह अपनी इच्छा प्रकट करे'।

अनुकूल अवसर देखकर यौगन्धरायण ने कंचुकी के द्वारा यह प्रार्थना की कि 'देवि, यह मेरी छोटी वहिन है। इसका पति परदेश में है, आवश्यक कार्य-वश मुझे भी वाहर जाना है; मैं संन्यासी हूँ, यह मेरे साथ कब तक रहेगी। अतः यदि आप इसे अपने संरक्षण में ले लें, तो बड़ी कृपा हो।'

राजकुमारी ने यह प्रार्थना स्वीकार करके वासवदत्ता को अपने संरक्षण में ले लिया। दोनों एक-दूसरे के गुणों से प्रभावित हो गयीं। वहुत दिनों के पश्चात् महाराजा उदयन किसी राज्यकार्यवश मगध आये। वहाँ के महाराजा दर्शक ने इनका वड़ा स्वागत-सत्कार किया और उनके रूप-गुण से प्रभावित होकर अपनी वहन पद्मावती का विवाह इनके साथ करने के लिए निश्चित किया और इन्होंने भी महाराजा का अनुरोध स्वीकार कर लिया। राजा उदयन का विवाह पद्मावती के साथ सम्पन्न हो गया।

एक दिन पद्मावती के शिर में वेदना हुई। राजभवन के समुद्रगृह में उसे आराम करने के लिए एक शय्या सजाई गई। दासी ने वासवदत्ता से कहा आप शीघ्र अनुलेप लेकर समुद्रगृह में आवें। जव महाराजा उदयन को अपनी रानी पद्मावती का समाचार मिला, तो वे भी समुद्रगृह की ओर चले गये, किन्तु उन्होंने देखा कि पद्मावती अभी आई नहीं है। अतः वे उस शून्य शय्या पर चादर ओढ़कर लेट गये और कुछ देर बाद सो गये। उसी

समय अनुलेप लेकर वासवदत्ता भी आ गई। उसने समझा कि पद्मावती चादर ओढ़कर सो गई है। अतः वह भी उसी शय्या पर बगल में लेट गई। थोड़ी देर के बाद महाराजा उदयन नींद में 'हा वासवदत्ता' कह कर चीख पड़े। वासदत्ता समझ गई कि यह पद्मावती नहीं है, मेरे प्रियतम हैं। अतः सामीप्य का सुख लेने के लिए वह थोड़ी देर तक ठहर गई। महाराजा ने स्वप्न में कहा—'हाय अवन्तिराजकुमारी ! हाय प्रिये ! क्या तुम मुझ पर कुपित हो ?' इतना कहने के बाद उनका हाथ शय्या के नीचे लटक गया। वासवदत्ता उनके हाथ को अपने हाथ से पकड़कर धीरे से शय्या पर रखकर शीघ्रता से बाहर चली आई। स्वप्नावस्था में भी महाराज उदयन केवल स्पर्श से वासवदत्ता को पहचान गये, पर इसे स्वप्न की घटना मान कर सन्तोष कर लिया।

कुछ समय के अनन्तर अपने प्रबल शत्रु आरुणी पर विजय का समाचार सुनकर महाराज़ को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी शत्रु पर विजय की कामना से मन्त्री यौगन्धरायण ने वासवदत्ता तथा अपने जलकर मरने तथा महाराज का पद्मावती के साथ विवाह का नाटक किया था। अब जब इसका यह उद्देश्य पूर्ण हो गया, तब यह महाराज के समक्ष वासवदत्ता के साथ उपस्थित होने का प्रयत्न करने लगा। इसी बीच अवन्तिराज प्रद्योत के दूतों ने अपने महाराज तथा महारानी का समाचार दिया कि 'आप दोनों के सहसा चले आने से हमें बहुत दुःख हुआ। पश्चात् दोनों का चित्र बनवाकर हमलोगों ने विवाह कार्य सम्पन्न करा दिया, जिसका चित्र आपके पास प्रेषित है। पद्मावती ने जब वह चित्र देखा तो वह तुरन्त कहने लगी कि इस रूप की स्त्री तो मेरे ही महल में है, जिसके भाई ने अपनी बहन कह कर धरोहर रूप में रखा है। महाराज ने कहा—'उस स्त्री को बुलवाओ।' उसी समय यौगन्धरायण भी महाराज के समक्ष उपस्थित होता है और वासवदत्ता भी आती है। दोनों को देखकर महाराजा उदयन आश्चर्यचकित हो गये। पश्चात् यौगन्धरायण ने इस घटना का यथार्थ कारण बता दिया और बड़ी ही प्रसन्नता के साथ महाराज उदयन ने महाराजा प्रद्योत से आज्ञा लेकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ नगर को प्रस्थान किया।

विद्वान् नाटककार द्वारा लिखित यह नाटक कथावस्तु, कथोपकथन,

चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि समस्त नाटकीय तत्त्वों से परिपूर्ण एक प्रशस्त नाटक है ।

(२) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

श्रीकालिदास द्वारा लिखित नाटकों में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक नाटक का विशेष महत्त्व है। इस कथा की कथावस्तु ७ अंकों में आवद्ध है। यह नायिका-प्रधान नाटक है। इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि चन्द्रवंशी महाराजा दुष्यन्त हस्तिनापुर के शासक थे, उन्हें मृगया से बहुत प्रेम था। एक बार वे एक मृग का पीछा कर रहे थे, तब तक दो तपस्वी आकर उन्हें मना करते हुए कहने लगे—'महाराज, यह आश्रम का मृग है, इसे मत मारो। आपका अस्त्र दुःखियों की रक्षा के लिए है, निरपराधों की हत्या के लिए नहीं'।

महाराजा ने तपस्वियों की बातें मान कर धनुष से बाण उतार लिया। तपस्वियों ने आशीर्वाद दिया—'भगवान् करें, आपको चक्रवर्ती पुत्र हों'। इसके पश्चात् तपस्वियों ने कहा—'महाराज, यह महर्षि कण्व का आश्रम है। इस समय वे आश्रम में नहीं हैं, शकुन्तला उनकी कन्या है। अतिथियों के आदर-सत्कार का भार उसी पर है। आप आश्रम में चलें तथा आतिथ्य ग्रहण करें।

महाराज ने सोचा—रथ पर चढ़कर तपस्वियों के आश्रम पर जाना उचित नहीं है। अतः उन्होंने रथ वहीं छोड़ दिया और अपना धनुष-बाण अपने सारथी माधव्य को दे दिया।

महाराजा दुष्यन्त ने दूर से ही देखा कि शकुन्तला अपनी दो सखियों प्रियंवदा तथा अनसूया के साथ आश्रम के पौधों को सींचने में व्यस्त है। उसी समय एक भ्रमर उसके कपोलों के निकट आकर उसे परेशान करने लगा। शकुन्तला ने अपनी दोनों सखियों को पुकारा—'सखियो ! मुझे इस दुष्ट भौंरे से बचाओ'।

सखियों ने उत्तर दिया—'हम कौन होती हैं बचाने वाली ? महाराजा दुष्यन्त को क्यों नहीं पुकारती ? जो इस देश के रक्षक हैं वे ही तेरी रक्षा करेंगे'।

महाराजा दुष्यन्त लता की ओट से इन सखियों का संवाद सुन रहे थे। वे अवसर पाते ही प्रकट हो गये। उन्हें देखकर शकुन्तला कुछ संकुचित-सी हो गई। महाराज के पूछने पर सखियों ने बतलाया कि हमारी सखी शकुन्तला

मेनका अप्सरा से उत्पन्न महर्षि विश्वामित्र की कन्या है। महर्षि कण्व इसके पालक पिता हैं। अब यह प्रिय सखी विवाह के योग्य हो गई है, पिता कण्व योग्य वर की तलाश में हैं, जिससे कन्यादान कर निश्चित हो जायें।

सखियों के पूछने पर महाराज ने अपना वास्तविक परिचय न देकर अपने को महाराजा दुष्यन्त का धर्माधिकारी बतलाया। अब महाराजा दुष्यन्त तथा महर्षि कण्व-कन्या शकुन्तला दोनों एक-दूसरे पर अनुरक्त हो चुके थे। ऋषियों को महाराज का परिचय मिल चुका था। उन्होंने इनसे प्रार्थना की कि महाराज, आप कुछ दिनों तक इस आश्रम पर ठहर कर हमलोगों की रक्षा करें। महाराजा दुष्यन्त तो शकुन्तला के प्रेम के कारण वहाँ रहना ही चाहते थे। उन्होंने ऋषियों को आश्वासन दिया। उसी समय राजधानी से माताओं का बुलावा आया कि आगामी चौथे दिन पुत्रपिण्डपालन व्रत है जिसमें आपका रहना आवश्यक है। महाराजा दुष्यन्त असमंजस में पड़ गये परन्तु शकुन्तला के प्रेमवश वे वहीं रह गये और अपने स्थान पर सखा माधव्य को समझा कर राजधानी भेज दिया।

इधर शकुन्तला महाराज के विरह में कामज्वर से पीड़ित हो गई। सखियों ने पूछा कि प्रिय सखी, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ?

शकुन्तला ने कहा—प्यारी सखियो, जब से मैंने तपोवन की रक्षा करने राजा को देखा है, तभी से उन्हें पाने की अभिलाषा में मेरी ऐसी अवस्था हो गई है।

सखियों ने कहा—प्रिय सखी, तुम एक पत्र लिखो, जिसे हम दोनों पुष्पों के बीच में छिपा कर महाराजा को उपहार के रूप में दे देंगी। सखियों की राय से शकुन्तला पत्र लिखती है—हे निर्दयी, तुम्हारे मन की बात तो मैं नहीं जानती, परन्तु कामदेव दिन-रात मुझे पीड़ित कर रहा है।' उसी समय लता मण्डप में उन सखियों के बीच महाराजा दुष्यन्त भी पहुँच गये। उन्होंने वहाँ छिप कर शकुन्तला की बातें सुन ली थी। अतः सखियों के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मैं शकुन्तला को अपनी पत्नी बनाऊँगा और अपनी सभी रानियों के ऊपर पट्टमहिषी बनाऊँगा।

सखियों के चले जाने के बाद उन्होंने गन्धर्व रीति से शकुन्तला के साथ विवाह किया, जिसके पश्चात् शकुन्तला ने गर्भधारण कर लिया। राजकार्यवश जब महाराजा अपनी राजधानी हस्तिनापुर चलने को प्रस्तुत हुए, तब शकुन्तला

के घबड़ाने पर उन्होंने अपनी अंगूठी दी और कहा कि 'इसमें मेरे नाम के जितने अक्षर हैं, उतने ही दिनों में मैं तुम्हें अपनी राजधानी में बुलवा लूंगा'।

शकुन्तला अपने पति महाराजा दुष्यन्त के वियोग में बड़ी ही दुःखी हुई। वह उनकी चिन्ता में बेसुध होकर बैठी रहती थी। इसी बीच महाक्रोधी ऋषि दुर्वासाजी आये, परन्तु शकुन्तला उनका आना न जान सकी। उन्होंने उसे शाप दे दिया कि 'तुम जिस प्रियतम की चिन्ता में बैठी हो कि मुझ तपस्वी के बार-बार कहने पर भी ध्यान नहीं दे रही हो, वही पुरुष तुम्हारे बार-बार याद दिलाने पर भी तुम्हें पहचान न सकेगा'।

सखियों ने जब यह शाप सुना, तो वे घबड़ा गयी और शाप देकर जाते हुए दुर्वासा ऋषि के चरणों में गिर कर शापानुग्रह करने की प्रार्थना की। ऋषि ने कहा कि मेरा शाप व्यर्थ तो नहीं होगा, परन्तु जब शकुन्तला अपने प्रियतम को वह अँगूठी दिखाकर अभिज्ञान करायेगी, तब अँगूठी देखते ही उन्हें शकुन्तला के साथ विवाह की याद आ जायेगी।

जब सोमतीर्थ से महर्षि कण्व अपने आश्रम पर आये, उसी समय आकाश-वाणी हुई कि 'महर्षे, तुम्हारी कन्या ने राजा दुष्यन्त के साथ गन्धर्व विवाह कर लिया है और वह गर्भवती है'।

आकाशवाणी सुनकर ऋषि को बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरी कन्या ने योग्य वर का वरण किया है। उन्होंने शकुन्तला को बुलाकर आशीर्वाद दिया और गौतमी से कहा कि विवाहिता तथा गर्भवती कन्या को बहुत दिनों तक पिता के घर में नहीं रहना चाहिए। अतः विदाई की शीघ्र तैयारी करो। शकुन्तला सभी से यथायोग्य मिलकर पति-गृह जाने को तैयार हो गई। गौतमी तथा दो शिष्य भी साथ में गये। जाते समय सखियों ने शकुन्तला से कहा कि सखी, यदि कोई सन्देह की बात हो तो तुम महाराजा द्वारा प्राप्त अंगूठी उन्हें दिखा देना। महर्षि कण्व ने अपनी कन्या को पातिव्रत धर्म का सुन्दर उपदेश दिया। विदाई के समय करुण दृश्य छा गया।

जब ये सभी शक्रावतार तीर्थ के निकट पहुँचे, तब सभी वहाँ के जल में हाथ-मुँख धोने लगे। उसी समय शकुन्तला की अंगुली से निकल कर अँगूठी जल में में गिर गई और इस बात को वह जान न सकी। उस अँगूठी को एक मछली निगल गई। अब ये सभी राजदरबार के दरवाजे पर पहुँचे। शिष्यों ने

द्वारपाल से कहा—'हमलोग महर्षि कण्व के आश्रम से आये हैं। अतः भीतर जाकर महाराज से निवेदन कर दो'।

महाराज दुष्यन्त ने आज्ञा दी कि 'उन्हें शीघ्र आदरपूर्वक ले आया जाय।' महाराजा ने बड़े ही आदर-सत्कार से पूछा कि 'मेरे लिए महर्षि कण्व की क्या आज्ञा है ?'

शिष्य ने आशीर्वाद देने के अनन्तर कहा कि महाराज, उन्होंने कहा है कि 'मेरी अनुपस्थिति में आपने मेरी कन्या शकुन्तला के साथ गन्धर्व रीति से विवाह किया है—इसकी मुझे बड़ी प्रसन्नता है। यह कन्या गर्भवती है, अब इसे स्वीकार कीजिए'। तपस्विनी गौतमी ने भी शिष्य की बात का समर्थन किया, परन्तु महर्षि दुर्वासा के शाप ने राजा के विवेक को हर लिया। उन्होंने कहा—'ये आप लोग क्या ढोंग कर रहे हैं। मेरा शकुन्तला के साथ कभी विवाह नहीं हुआ।'

महाराज की बात सुनकर शकुन्तला का हृदय भयभीत हो गया, काँपने लगा, फिर भी उसने धैर्यपूर्वक कहा कि 'राजन् ! आप यह कैसी बातें कर रहे हैं ? पहले तो आपने मुझसे मीठी-मीठी बातें की, फिर एकान्त में गन्धर्व रीति से विवाह किया और मुझे गर्भवती बनाया। देखिए, आप ही की दी हुई आपके नाम की यह अँगूठी प्रमाण है'।

अंगुठी दिखाने हेतु शकुन्तला ने अंगुली उठाई तो देखा कि—उसकी अंगुली में अँगूठी नहीं है। उसने सोचा—शायद शक्रावतार के तीर्थ के जल में हाथ-मुँह धोने के समय गिर गई हो।

तब महाराज ने कहा—'बस, और कुछ कहना है' ?

शकुन्तला अपने अभाग्य पर रोने लगी। गौतमी तथा शिष्यों ने कहा—अब रोती क्यों है ? अपने कर्त्तव्य का फल भोगो। जो माता-पिता एवं गुरुजनों से बिना पूछे स्वयं एकान्त में विवाह करते हैं, उनकी यही दशा होती है।

शकुन्तला अपने अभाग्य पर रोती हुई जा रही थी, उसी समय उसकी माँ की प्रेरणा से एक अप्सरा आई और उसे आकाश में ले जाकर पुनः हिमगिरि पर्वत पर रहने वाले महर्षि के आश्रम पर पहुँचा दिया, जहाँ शकुन्तला ने वीर पुत्ररत्न को जन्म दिया। बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगा। ऋषि ने उसका नाम सर्वदमन रखा।

इधर राजा के सिपाहियों ने एक मल्लाह को राजमुद्रा बेचते हुए चोरी के अपराध में गिरफ्तार कर लिया। धीवर ने कहा—'मैंने चुराया नहीं है, मैंने इसे मछली के पेट में से पाया है'।

जब राजा ने अंगूठी को देखा, तब उन्हें शकुन्तला की याद आ गई। पहले उन्होंने पश्चात्ताप किया, बाद में धैर्य धारण करके महर्षि कश्यप के आश्रम में प्रिय पत्नी शकुन्तला तथा पुत्र सर्वदमन का दर्शन किया, मन आह्लाद से परिपूर्ण हो गया। तत्पश्चात् वे ऋषि से आशीर्वाद तथा आज्ञा पाकर प्रसन्नचित्त पत्नी तथा पुत्र के साथ अपनी राजधानी हस्तिनापुर आये। वही पुत्र सर्वदमन भरत के नाम से विख्यात हुआ।

प्रस्तुत नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देशकाल तथा उद्देश्य आदि सभी नाटकीय तत्त्वों से पूर्ण एक प्रशस्त नाटक है।

(३) मृच्छकटिक

श्रीशूद्रक द्वारा लिखित नाटकों में 'मृच्छकटिक' नामक नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मृच्छकटिक शब्द दो शब्दों से बना है—मृत्+शकटिक। इसका शाब्दिक अर्थ है मिट्टी की गाड़ी। यह नाटक १० अङ्कों में आबद्ध है। ब्राह्मण आर्य चारुदत्त इस नाटक का नायक है, जो अपनी दानशीलता के कारण निर्धन हो चुका है। उसकी पत्नी आर्याधूता बड़ी ही साध्वी है।

किसी समय की बात है कि उज्जयिनी में पालक नामक राजा का शासन था। इसका साला शकार बड़ा ही दुष्ट तथा दुराचारी था। इस नगर में एक प्रसिद्ध सुन्दरी वेश्या थी, जिसका नाम वसन्तसेना था।

वसन्तसेना चारुदत्त से प्रेम करती थी। वह जानती थी कि चारुदत्त निर्धन है, फिर भी उसके स्वभाव पर मुग्ध थी। इधर दुष्ट शकार उसे अपनी प्रेमिका बनाना चाहता था, परन्तु वह उसे पसन्द नहीं करती थी। वह चारुदत्त के घर में छिपकर अपने को उस दुष्ट के चंगुल से बचा लेती थी। एक बार उसने अपने आभूषणों की पिटारी चारुदत्त के यहाँ रख दी थी, जिसे इसकी दासी मदनिका के प्रेमी शर्विलक ने चुरा लिया था। वसन्तसेना से यह बात छिपी नहीं रही। बाद में ये दोनों प्रेमी वैवाहिक सूत्र में बँध गये। इधर आर्य चारुदत्त ने अपनी पत्नी आर्याधूता का रत्नहार वसन्तसेना के यहाँ भिजवा दिया, जिससे चोरी होने के कारण वह अपने मन में अन्यथा न सोचे। उज्जयिनी के राजा पालक के यहाँ एक युवक रहता था, जिसका नाम आर्यक था। इसके

सम्बन्ध में किसी सिद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में यह उज्जयि का राजा होगा। यह ज्ञात होते ही राजा पालक ने इसे कारागार में ब करवा दिया। जिस समय सिपाही उसे पकड़ कर ले जा रहे थे, उसी स शर्विलक अपनी पत्नी मदनिका के साथ अपने घर जा रहा था। उसने आ को देख लिया, जिसने किसी संकट में इसकी सहायता की थी। शर्वि अपनी नववधू मदनिका को अपने विश्वस्त मित्र के यहाँ सुरक्षित रख उसकी सहायता के लिए चल दिया और इसके प्रयत्न से आर्यक उस वन्दी से निकल कर भाग गया।

एक दिन की बात है कि वसन्तसेना चारुदत्त के घर गई। रात में देर जाने के कारण वह वहीं रुक गई। प्रात:काल उसने देखा कि चारुदत्त का बा रोहसेन पड़ोसी के बालक के हाथ में सोने की गाड़ी देखकर वैसी ही ग लेने के लिए रो रहा है। दासी मदनिका उस बालक को मिट्टी की गाड़ी दे बहलाना चाहती थी, लेकिन यह बालक मानता नहीं था। उस बालक अपने पिता की निर्धनता का ज्ञान नहीं था। उसी समय वसन्तसेना ने दा के हाथ में अपने आभूषण देकर कहा कि 'इस बालक के लिए एक सोने गाड़ी खरीद कर दे दो'।

एक दिन चारुदत्त उद्यान में वसन्तसेना के आगमन की प्रतीक्षा कर था और उसके आने के लिए अपना रथ भेज दिया था। जब यह बात श को मालूम हुई तब उसी समय उसने वसन्तसेना को अपहरण करने के लि से उनके रथ आने के पहले अपना रथ भिजवा दिया। वसन्तसेना जब तब उस रथ को चारुदत्त का रथ समझ कर उस पर बैठ गई। इस प्र वसन्तसेना चारुदत्त के उद्यान में न जाकर शकार के उद्यान में पहुँच गई।

इधर बन्दीगृह से भागता हुआ आर्यक चारुदत्त के द्वार तक आ वहाँ उसने देखा कि वसन्तसेना के लिए रथ आया है, वह उसी में गया। रथवाहक ने समझा कि वसन्तसेना आ गई और रथ चला दि इस प्रकार आर्यक चारुदत्त के उद्यान में पहुँच गया। उसने चारुदत्त को अ परिचय दिया, जिससे प्रभावित होकर उस चारुदत्त ने उसके निवास व्यवस्था अपने मित्र के यहाँ कर दी। इधर वसन्तसेना को देखकर श बहुत प्रसन्न हुआ, उससे प्रणय निवेदन किया, परन्तु वसन्तसेना ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, जिससे शकार ने उसके गले को दबाकर

मरा हुआ समझ कर पत्ते के ढेर के नीचे छिपा दिया। तदनन्तर न्यायालय में पहुँच कर न्यायाधीश से कहा कि चारुदत्त ने धन के लोभ में वसन्तसेना की हत्या कर दी। यद्यपि न्यायाधीश चारुदत्त के सच्चरित्र से परिचित था, उसे विश्वास नहीं हुआ, फिर भी साक्ष्य के अभाव में चारुदत्त को फाँसी की सजा सुनायी गयी। वह अपने पुत्र रोहसेन से मिलता हुआ वधस्थान की ओर चला। दैवयोग से वसन्तसेना मरी नहीं थी, जीवित थी। एक बौद्ध भिक्षु ने उसे पहचान लिया और चारुदत्त के स्थान पर ले गया, परन्तु मार्ग में ही पता चला कि उसे फाँसी की सजा हो रही है। वसन्तसेना भिक्षु के साथ शीघ्रता से वधस्थान पर पहुँच गई और फाँसी की सजा रुक गई। चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों के हृदय में एक-दूसरे को देख कर महान् हर्ष हुआ। उसी समय शर्विलक आया और उसने बतलाया कि आर्यक ने राजा पालक को मार कर राज्यशासन का सञ्चालन अपने हाथ में ले लिया है और अपनी कृतज्ञता प्रकट करने हेतु उसने चारुदत्त को कुशावती का राज्य भेंट किया है। यह समाचार सुनते ही सभी को बड़ी ही प्रसन्नता हुई। शकार का अपराध प्रकट हो गया, उसे पकड़कर चारुदत्त के सामने उपस्थित किया गया, परन्तु वह मायावी उनके चरणों को पकड़ कर शरणागत बन गया। चारुदत्त ने उसे अभयदान देकर मुक्त कर दिया। इधर जब आर्याधूता को अपने पति के फाँसी का समाचार मिला, तब वह चिता में जलने जा रही थी, परन्तु सहसा अपने पति आर्य चारुदत्त और वसन्तसेना को देखकर प्रसन्न हो गई। सर्वत्र आनन्द छा गया। चारुदत्त ने वसन्तसेना को पत्नी रूप में स्वीकार किया। वह कुलवधू के रूप में समाज में प्रतिष्ठित हो गई।

विद्वान् नाटककार द्वारा लिखित यह नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, देशकाल तथा उद्देश्य आदि समस्त नाटकीय तत्त्वों से युक्त एक प्रशस्त नाटक है।

(४) रत्नावली

श्रीहर्ष द्वारा लिखित नाटकों में 'रत्नावली' नामक नाटिका का विशेष महत्त्व है। यह नाटिका ४ अंकों में आबद्ध है। इस नाटिका के आरम्भ में हम देखते हैं कि सूत्रधार नट नटी से कहता है कि आप तो निश्चिन्त हैं, परन्तु मुझे तो अपनी कन्या के विवाह की चिन्ता है और इसके साथ ही साथ यह

भी चिन्ता है कि विवाह कहीं निकट ही हो तो विशेष अच्छा है, ऐसा न
कि कहीं दूर देश में हो जाय ।

सूत्रधार नट कहता है कि दूर या निकट की चिन्ता व्यर्थ है । भाग्य
प्रधानता है, जिस कन्या का भाग्य उसे जहाँ ले जाय । कहाँ सिंहल देश
राजकुमारी रत्नावली और कहाँ उज्जयिनी के राजा वत्सराज उदयन ? प
वह मन्त्री यौगन्धरायण के द्वारा सिंहल देश से लाई गई सागरिका नाम
रानी की दासी बनी, पश्चात् वह रत्नावली नाम से राजा की रानी बनी
वसन्तोत्सव में कामदेव की पूजा का दृश्य उपस्थित होता है । राजा-रानी त
सभी पुरजन इस महोत्सव के दर्शनार्थ मकरन्द बाग में उपस्थित होते हैं
सिंहल की राजकुमारी और रानी की दासी सागरिका भी यह देखने आती
कि इस देश में किस प्रकार मदनोत्सव मनाया जाता है, परन्तु रानी वासवद
उसे महल में जाने की आज्ञा देती है । वह वहाँ से थोड़ी दूर हट कर औ
छिप कर मदनपूजा देखती है । रानी वासवदत्ता सर्वप्रथम कामदेव की पू
करती है, तत्पश्चात् अपने पतिदेव वत्सराज उदयन की । राजकुमारी सागरि
राजा को कामदेव के समान सुन्दर देखकर मन ही मन प्रसन्न होती है । व
सोचती है कि मन्त्री यौगन्धरायण मुझे यहाँ जिस उद्देश्य से ले आये हैं,
यही मेरे होने वाले पति साक्षात् काम के अवतार ही मालूम होते हैं । तदनन्त
वहाँ का उत्सव समाप्त होता है ।

इसके पश्चात् हम देखते हैं कि राजा उदयन तथा सागरिका दोनों ए
दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं । एक दिन की बात है कि सागरिका उद्यान
बैठकर राजा का चित्र बना रही थी, उसी समय उसे ढूंढ़ती हुई सुसंगता
वहीं पहुँच गई और जिज्ञासा की कि सागरिके, यह किसका चित्र बना रही हो
उसने उत्तर दिया—कामदेव का । सुसंगता ने चित्रपट पर राजा का चि
देखकर कहा कि अच्छा तो देखो—मैं इसी पट पर रति—सागरिका का
चित्र बना देती हूँ ।

वहाँ दोनों में प्रेम की बातें हो रही थी और वहीं पिंजड़े में बैठी सारि
सब बातें सुन रही थी । सागरिका को सन्देह हुआ कि कहीं यह सारिका रा
के प्रति प्रेम की बातों को कह कर प्रकट न कर दे । इसी बीच एक बन्दर
गया और पिंजड़े में रखे हुए दही-भात को खाने के लिए उसके दरवाजे
खोल दिया, जिससे पक्षी सारिका उड़ कर पेड़ की डाली पर चली गई औ

ये दोनों सखियाँ डर कर चित्रपट को वहीं छोड़कर अन्यत्र चली गयीं। जिस वृक्ष पर सारिका पहुँची, उसी के नीचे राजा तथा उनका विदूषक दोनों बैठे हुए बातें कर रहे थे, उसी समय पक्षी ने सागरिका के प्रेम की बातें कहीं। जब राजा विदूषक के साथ उस उद्यान में गये, तो वहाँ उन्होंने वह चित्रपट देखा, जिस पर उनके साथ सागरिका का चित्र बना था। राजा उदयन वह प्रेम-चित्र देखकर बहुत ही प्रभावित हुए। उसी समय वहाँ सुसंगता के साथ सागरिका भी आ गई। अभी राजा से यह बात हो रही थी कि रानी वासवदत्ता के आने का समाचार मिला। ये दोनों सखियाँ छिप गयीं। रानी वासवदत्ता ने उस चित्रपट में राजा के साथ एक कन्या को देखा और पूछा कि यह किसका चित्र है? राजा तथा विदूषक ने कहा कि यह एक काल्पनिक चित्र है। रानी वासवदत्ता राजा के इस व्यवहार से कुपित हो गई और अपनी चेटी के साथ अन्तःपुर में चली आई।

महाराज उदयन सागरिका के वियोग में दुःखी हो गये, परन्तु उन्हें पता चला कि वह महारानी वासवदत्ता का वेष धारण कर वह महाराज से मिलने आ रही है, परन्तु संयोग ऐसा उपस्थित हो गया कि वह तो नहीं आ सकी, पहले घूँघट में महारानी वासवदत्ता ही उपस्थित हो गई। राजा ने सोचा कि यह सागरिका है। उन्होंने उससे कहना प्रारम्भ किया—'प्रिये सागरिके, तुम धन्य हो। कैसा सुन्दर तुम्हारा रूप है। तुम साक्षात् रति हो। आओ, निःशंक होकर मेरा आलिंगन करो'। महाराज की बातें सुनकर रानी वासवदत्ता के क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने घूँघट हटाकर कहा—'आर्यपुत्र, वास्तव में मैं सागरिका ही हूँ? अच्छी प्रकार से देख लीजिए'।

महाराज, वासवदत्ता को देखकर बहुत ही लज्जित हुए और अनुनय-विनय से उसके क्रोध को शान्त करना चाहा, पैरों पर भी गिरे, परन्तु वह क्रोध की मुद्रा में अन्तःपुर चली गई। तदनन्तर वासवदत्ता के वेष में सागरिका उपस्थित हुई। उसे महारानी के आगमन तथा उसके प्रति अपमानजनित शब्दों के प्रयोग का पता चला। अतः वह इस अपमान से मर जाना ही अच्छा समझी। वह वृक्ष की डाल में फाँसी लगा कर मरना ही चाहती थी कि तुरन्त महाराज पहुँच गये और उसे ऐसा करने से मना किया और उन्होंने प्रेमभरे शब्दों में कहा—'सागरिके, मेरा सच्चा प्रेम तुम्हारे ऊपर है'। उसी समय

वासवदत्ता भी आ गई। राजा की बातों को सुनकर उसने कहा—'आर्यपुत्र, बिलकुल ठीक कह रहे हैं'।

द्विगुणित क्रोध करती हुई महारानी पुनः अन्तःपुर में चली गई। इसी बीच में महाराज उदयन के समक्ष यौगन्धरायण उपस्थित हुआ और महाराज से निवेदन किया कि महाराज, यह सागरिका ही रत्नावली है, जिसे मैं सिंहल द्वीप से लाया हूँ। इसमें वह गुण है कि इसके साथ जिसका विवाह होगा, वह चक्रवर्ती नरेश बनेगा। मन्त्री की बात सुनकर रानी वासवदत्ता बड़े ही प्यार से सागरिका के हाथ को महाराज के हाथ में देती हुई कहती है कि 'आर्यपुत्र, अब इसे ग्रहण कीजिए'।

महाराजा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'महारानी का यह प्रसाद स्वीकार करता हूँ'।

विद्वान् नाटककार द्वारा लिखित यह नाटिका कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्रचित्रण, देश-काल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि नाटक के समस्त तत्त्वों से पूर्ण यह सफल नाटिका है।

(५) वेणीसंहारम्

श्री भट्ट महानारायण द्वारा लिखित नाटकों में 'वेणीसंहार' नामक नाटक का विशेष महत्त्व है। इसकी कथावस्तु ६ अंकों में आबद्ध है। इस नाटक का आधार महाभारत है। इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि महाराजा युधिष्ठिर के परामर्श से महाभारत युद्ध के पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण शान्ति के लिए सन्धि का प्रस्ताव लेकर सन्देशवाहक बनकर दुर्योधन की सभा में गये, परन्तु अभिमानी दुर्योधन ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया बल्कि उन्हें बन्दी बनाने का प्रयत्न भी किया, परन्तु भगवान् ने उस भरी सभा में अपना ऐसा विराट् रूप दिखलाया कि सभी आश्चर्यचकित हो गये।

भीम सन्धि-प्रस्ताव के पक्ष में नहीं थे, उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। वे यही सोचते थे कि यदि सन्धि हो गई तो मेरी प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी? मैं रानी द्रौपदी की खुली हुई वेणी दुर्योधन के रक्त से किस प्रकार बाँधूंगा? भीम ने निश्चय किया कि यदि भाई युधिष्ठिर मेरा साथ न देंगे, तब भी यह युद्ध होकर रहेगा।

इसी क्रोधावेश में वे शस्त्रागार की ओर चले, परन्तु क्रोधाधिक्य के कारण वे रानी द्रौपदी के अन्तःपुर में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि वह

रो रही है। भीम ने जिज्ञासा की, तो पता चला कि अभी-अभी दुर्योधन की पत्नी भानुमती आई थी। वह कह रही थी कि 'बहिन द्रौपदी, अब तो सन्धि-प्रस्ताव प्रारम्भ हो गया, अब अपने खुले केशों को क्यों नहीं बाँध लेती ?' उसी समय दासी ने उत्तर दिया कि 'रानी भानुमती, जब तक आपके केश नहीं खुलेंगे, तब तक मेरी महारानी के केश कैसे बँधेंगे' ?

यह समाचार सुनकर भीम का क्रोध द्विगुणित हो गया। उन्होंने महारानी द्रौपदी को अनेक प्रकार से आश्वासन दिया। इतने में युद्ध के नगाड़ों का शब्द सुनाई दिया, पता चला कि सन्धि-प्रस्ताव विफल हो गया। भीम तथा द्रौपदी को असीम प्रसन्नता हुई।

महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हो गया। गुरु द्रोणाचार्य द्वारा निर्मित चक्रव्यूह में जयद्रथ के कौशल से अर्जुनपुत्र अभिमन्यु का कौरव-वीरों ने निरीहता-पूर्वक वध कर दिया। पाण्डवों में शोक तथा कौरवों में प्रसन्नता छा गई। दुर्योधन प्रफुल्लित होकर यह विजय-समाचार सुनाने के लिए अपनी पत्नी भानुमती के अन्तःपुर में गया, परन्तु उसने देखा कि वह अपनी सखियों से कुछ बातें कर रही है। अतः वह छिपकर अपनी रानी की बातें सुनने लगा। रानी कह रही थी कि 'हे सखी, देवताओं से भी सुन्दर उस नकुल को देखकर मैं उस पर अनुरक्त हो गई और लताकुञ्ज में छिप गई। वहाँ उसने मेरे स्तनवस्त्र को हटा दिया और······।

दुर्योधन ने अपनी रानी भानुमती के मुख से इतनी बातें सुनते ही अनुमान कर लिया कि मेरी पत्नी का नकुल के साथ अवैध सम्बन्ध है। अतः उसे नष्ट करने के लिए उसने म्यान से तलवार निकाल ली, तब तक उसे सुनाई दिया कि भानुमती कह रही है कि सखियों, यह स्वप्न देखते हुए प्रातःकाल हो गयी और प्रातःकालीन नगाड़े तथा मृदंग का शब्द सुनकर मैं जाग उठी। दुर्योधन अब समझ गया कि मेरी रानी सखियों से स्वप्न की बात कह रही थी। उसका क्रोध शान्त हो गया और वह महारानी के समक्ष उपस्थित हुआ।

इधर जब महारथी अर्जुन को अभिमन्यु-वध का समाचार मिला, तो उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि 'आज सायंकाल होते-होते जयद्रथ का वध करूँगा। यदि ऐसा नहीं कर सका तो स्वयं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा'।

अर्जुन की प्रतिज्ञा से कौरव-दल में भय व्याप्त हो गया, जयद्रथ घबड़ा गया। उसकी माता तथा पत्नी दोनों ने दुर्योधन से प्रार्थना करके उसकी

प्राण-रक्षा के लिए निवेदन किया, परन्तु अर्जुन ने उसे मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, उसे कोई भी बचा न सका। अब युद्ध की गति तेज हो चली। कौरव पक्ष के अनेक वीर द्रोणाचार्य तथा कर्ण इत्यादि सभी मारे गये। भीम ने दुःशासन की छाती चीरकर उसके रक्त का पान कर लिया तथा अपने शरीर में लपेट लिया। अन्तिम दिन युद्ध से हताश होकर दुर्योधन अपने प्राण बचाने के लिए एक सरोवर में छिप गया, वह जलस्तम्भन विद्या जानता था। वनचरों से पता पाकर भीम ने उसे ललकारा। वह बाहर आया और दोनों में गदायुद्ध होने लगा। इसी बीच दुर्योधन के एक राक्षस मित्र ने तपस्वी वेश में महाराजा युधिष्ठर के निकट जाकर यह झूठा समाचार सुनाया कि 'दुर्योधन की गदा से भीम धराशायी हो गये'। यह सुनते ही महाराज तथा महारानी द्रौपदी तथा अन्य सभी शोक से विह्वल हो गये। इसी बीच भीम दुर्योधन का वध करके खून से लथपथ द्रौपदी का नाम लेते हुए वहाँ पहुँच गये। महाराज ने सोचा कि यह भीम का हत्यारा दुर्योधन है। अतः उन्होंने उसे पकड़कर अपनी बाहुपाश में बाँध लिया और कहा कि 'हत्यारे, अब तुम मुझसे नहीं बच सकते।'

यह सुनते ही भीम ने कहा—'महाराज की जय हो। अब कौरव-कुल दुर्योधन कहाँ? मैं आपका अनुज भीम हूँ। उसे यमराजपुरी भेजकर उसका रक्त लाया हूँ, जिससे महारानी द्रौपदी की खुली हुई वेणी का शृंगार होगा'।

भीम के मुख से विजय-समाचार सुनकर महाराज युधिष्ठिर हर्ष से अति विह्वल हो उठे। उन्होंने उसका आलिंगन किया। तदनन्तर भीम द्रौपदी के निकट पहुँच कर अपने रक्तरंजित हाथों से उसकी वेणी गूँथने लगे।

विद्वान् नाटककार द्वारा लिखित यह नाटक कथावस्तु, कथोपकथन चरित्र-चित्रण, देशकाल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि समस्त नाटकीय तत्त्वों से युक्त एक प्रशस्त नाटक है।

(६) उत्तररामचरित

श्रीभवभूति द्वारा लिखित नाटकों में 'उत्तररामचरित' नामक नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी कथावस्तु ७ अंकों में आबद्ध है। इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि लंकाविजय के पश्चात् जब भगवान् राम का राज्याभिषेक हुआ, उस समय ऋषि-मुनि और अनेक सम्बन्धीजन उस महोत्सव में आये हुए थे। भगवान् राम ने उन पूज्य जनों एवं अतिथियों का भलीभाँति

स्वागत किया। बाद में वे उनसे आज्ञा लेकर विदा हुए। इसी समय राम की बहिन तथा ऋष्यश्रृंग की पत्नी शान्ता के यहाँ एक यज्ञ प्रारम्भ हुआ, जिसमें गुरु वशिष्ठ जी आचार्य थे। वहाँ से निमन्त्रण पाकर गुरुपत्नी अरुन्धती के साथ कौशल्यादि सभी माताएँ यज्ञोत्सव देखने चली गईं। उसी समय शान्ता ने राम के लिए एक सन्देश भेजा कि 'सीता गर्भवती हैं। उनकी सभी इच्छाएँ पूरी होनी चाहिए।' उसी समय गुरु वशिष्ठ ने भी सन्देश भेजा कि 'राम! तुम राजा हो। अत: प्रजानुरञ्जन पर पूरा ध्यान रखना।' भगवान् राम ने दोनों सन्देशों का श्रवण किया और उनका दृढ़तापूर्वक पालन करना प्रारम्भ किया। जब सीता का मन उदास हो जाता था तब राम अयोध्या में बने हुए रामचरित के चित्र सीता को दिखला कर उनका मन-बहलाव करते थे, बीच-बीच में उनकी इच्छा भी पूछ लेते थे। एक दिन वनवास का चित्र देखकर सीता ने अपने स्वामी राम से कहा कि 'प्रियतम! वन में ऋषियों का दर्शन करने तथा भागीरथी गंगा में गोता लगाने की मेरी इच्छा कर रही है।' भगवान् राम ने कहा—'बहुत अच्छा, यह इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी।'

इसी बीच राम का एक विश्वासपात्र दुर्मुख नाम का एक गुप्तचर आया और निवेदन किया कि 'महाराज! महारानी सीता के विषय में बहुत लोकापवाद हो रहा है। इस समाचार से राम विह्वल हो गये, परन्तु प्रजानुरञ्जन हेतु सीता का परित्याग ही उचित समझा। उन्होंने लक्ष्मण को पुकारा और सीता को वन-विहार के व्याज से महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पहुँचा कर लौट आने के लिए कहा। लक्ष्मण ने महाराज की आज्ञा से भगवती सीता को रथ पर बैठाया और उनको गंगा तटवर्ती वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़कर पुन: वापस आ गये। भगवती सीता प्रसव-पीड़ा से दु:खित होकर गंगा में कूद पड़ी। माता गंगा तथा पृथ्वी ने उन्हें बचाया और वे उन्हें पाताललोक में ले गईं। भगवती सीता ने वहीं कुश-लव नामक दो पुत्ररत्नों को जन्म दिया। ऋषि ने उन्हें गंगा से प्राप्त कर यथोचित संस्कार करके क्षत्रियोचित शास्त्र-शस्त्र-अस्त्र विद्याएँ पढ़ाईं। महर्षि को तमसा तट पर वाग्देवता का साक्षात्कार हुआ था और उन्हीं के आदेश से रामायण की रचना की थी, उसे भी गायन रूप में पढ़ाया।

जब गुरु वशिष्ठ तथा कौशल्यादि माताओं को ऋष्यश्रृंग के यज्ञ में सीता के

परित्याग की घटना का पता चला, तो उन्होंने सोचा कि वधू से शून्य अयोध्या किस काम की ? अतः वे भी महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में चली गईं।

भगवान् राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया। निमंत्रण पाकर सभी ऋषि-मुनि तथा सम्बन्धी मित्र आदि आये। उन्होंने स्वर्णमयी सीता की प्रतिमा बनाकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। अश्व के मस्तक पर एक स्वर्णलेख अंकित था—'श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ का अश्व'। उस अश्व की सुरक्षा शत्रुघ्न-पुत्र चन्द्रकेतु कर रहे थे, उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी।

इधर एक दिन राम के राज्य में एक पञ्चवर्षीय ब्राह्मण-बालक मर गया। ब्राह्मण ने राम को उपालम्भ दिया कि आपके राज्य में अनीति हो रही है, असमय में ही मेरा बालक मृत्यु को प्राप्त हो गया। आप राज्य की देख-भाल नहीं करते। मेरा बालक जीवित कीजिए, अन्यथा मैं यहीं बालक रखकर जाता हूँ। भगवान् राम असमंजस में पड़कर अन्यायी का पता लगाते हुए पुष्पक यान से पञ्चवटी पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि शम्बूक नामक शूद्र अपना धर्म-कर्म छोड़कर तपस्या कर रहा है। उससे उन्होंने बातचीत की और 'इस अनीति एवं अधर्म के कारण ही ब्राह्मण बालक की मृत्यु हुई है'—ऐसा कह कर उसका सिर काट कर उसका वध कर दिया। इधर ब्राह्मण-बालक जीवित हो उठा।

भगवान् राम के मन में इच्छा हुई कि मैं अपने वनवास समय के स्थलों को पुनः देखूं। सर्वप्रथम उन्होंने महर्षि अगस्त एवं उनकी धर्मपत्नी लोपामुद्रा का दर्शन किया। तत्पश्चात् अन्य स्थानों का दर्शन प्रारम्भ किया। भगवती सीता की याद आने के कारण वे कभी-कभी मूर्च्छित हो जाते थे। अतः भगवती गंगा ने सीता से कहा कि देवी ! आज कुश-लव का बारहवाँ वर्ष है। उनका जन्मदिन मनाने हेतु अपने कुलदेवता भगवान् सूर्य का पूजन करके तुम शीघ्र ही पञ्चवटी चलो, वहाँ भगवान् राम कार्यवश आये हुए हैं और तुम्हारी स्मृति में वे बार-बार मूर्च्छित हो रहे हैं; उन्हें सम्भालने वाला कोई नहीं है। मैं अपनी माया से तुम्हें तत्क्षण पहुँचा दूंगी। वहाँ तुम सभी को देख सकोगी, परन्तु तुम्हें कोई भी नहीं देख सकेगा। भगवती सीता ने ऐसा ही किया और श्रीराम कुछ समय बाद यज्ञ को पूर्ण करने हेतु अयोध्या गये तथा भगवती सीता वाल्मीकि के आश्रम आईं।

इधर महाराजा जनक को जब सीता-वनवास का समाचार मिला तो वे

भी वाल्मीकि के आश्रम आये, माता कौशल्या भी आईं। वहाँ उन्हें राम के समान तेजस्वी दो बालकों कुश-लव को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। बालकों ने बताया कि हम महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं। उन्होंने रामायण की रचना कर हम दोनों भाइयों को शिक्षा दी है। उस रामायण का शीघ्र ही नाटक होने वाला है। वे बात ही कर रहे थे कि उसी समय अश्वमेध यज्ञ का अश्व वहाँ पहुँच गया। लव ने राम का अश्व जानकर उसे पकड़ लिया। रामायण के द्वारा वह राम की कथा जानता था, जिन्होंने अन्यायपूर्वक बालि का वध किया था। सैनिकों ने अश्व को छुड़ाना चाहा, पर इसने जृम्भकास्त्र का प्रयोग कर उन्हें बेहोश कर दिया। तदनन्तर अश्व के प्रमुख रक्षक चन्द्रकेतु के साथ द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। श्रीराम को पञ्चवटी से अयोध्या जाते समय मार्ग में ही जब इस बात का पता चला, तब वे वहाँ न जाकर युद्धभूमि में आ गये। दोनों वीरों ने उन्हें प्रणाम किया और उनके कहने से युद्ध बन्द हो गया। चन्द्रकेतु ने कहा कि इन्होंने ही जृम्भकास्त्र से सेना को स्तम्भित किया है। तब राम ने कहा कि वीर बालक! तुम अपने अस्त्र का निवारण कर लो। लव ने ऐसा ही किया। इसी बीच युद्ध का समाचार सुनकर बड़ा भाई कुश भी वहाँ आ गया और उसने भी राम को प्रणाम किया। भगवान् राम दोनों बालकों को देखकर मन-ही-मन सोच रहे थे कि ये बालक रूप-रंग-गुण में मेरे ही समान हैं, कहीं ये सीता के बालक तो नहीं हैं? भगवान् ने पूछा भी, परन्तु बालकों ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुश ने कहा कि महर्षि वाल्मीकि के कथनानुसार एक रूपक का प्रणयन होने वाला है, जिसे नाट्य के आचार्य भरतजी ने स्वीकृति दे दी है। एतदर्थ गंगा तट पर रंगमंच तैयार हो रहा है।

महर्षि वाल्मीकिजी ने रूपक देखने के लिए चारों ओर सर्वत्र निमंत्रण भिजवा दिया। पात्र के रूप में अप्सराओं ने रूपक का अभिनय किया, जिसमें सीता के निर्वासन, पाताल-प्रवेश, कुश-लव जन्म, महर्षि वाल्मीकि द्वारा कुश-लव का अस्त्र-शस्त्र विद्याध्ययन, रामायण-गान इत्यादि का वर्णन था। भगवान् राम तथा सभी यह रूपक देखकर मुग्ध हो गये। इसी समय अरुन्धती ने भगवान् राम से कहा कि भगवन्! सीता सर्वथा निर्दोष है। आपने लोकापवाद के भय से इनका निर्वासन किया था। अब इन्हें तथा इनके दोनों पुत्रों कुश-लव को ग्रहण करें। सभी उपस्थित ऋषियों, मुनियों एवं अयोध्यावासियों

ने इस बात का समर्थन किया और भगवान् राम ने इस आज्ञा को शिरोधार्य कर अपनी प्रिय पत्नी भगवती सीता के साथ अपने प्रिय पुत्रों कुश-लव को ग्रहण किया।

प्रस्तुत नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, देशकाल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि समस्त नाटकीय तत्वों से पूर्ण एक प्रशस्त नाटक है।

(७) मुद्राराक्षस

श्रीविशाखदत्त द्वारा लिखित नाटकों में 'मुद्राराक्षस' का विशेष महत्त्व है। इस नाटक की कथावस्तु ७ अंकों में आबद्ध है। इस नाटक में राक्षस की मुद्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान है, एतदर्थ इसका नाम 'मुद्राराक्षस' है। इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि मगधनरेश महानन्द से ब्राह्मण चाणक्य किसी कारण अप्रसन्न हो गया था। उसने अपनी शिखा खोलकर यह प्रतिज्ञा की कि जब तक नन्दवंश का नाश नहीं कर लूँगा तब तक शिखा-बन्धन नहीं करूँगा। इस कार्य की सिद्धि के लिए उसने कूटनीति से बाहरी राजा पर्वतक को आधा राज्य देने का लोभ देकर उनसे सहायता ली और नन्दवंश का नाश किया। तत्पश्चात् नन्द के मन्त्री राक्षस ने नन्द के भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठा कर राज्यकार्य चलाने का विचार किया, परन्तु चाणक्य ने क्षपणक जीवसिद्धि से सांसारिक असारता का उपदेश दिलाकर उसे राज्यशासन से विरक्त करा दिया। वह राज्य छोड़कर जंगल में चला गया। नगर में यह किंवदन्ती फैला दी गई कि राक्षस ने ही विषकन्या के प्रयोग से उसे समाप्त किया है।

अब राक्षस ने एक चाल चली। उन्होंने पर्वतेश्वर के वृद्ध मंत्री से मिलकर उसे समझाया कि चाणक्य बड़ा धूर्त है। उसने आधा राज्य देने का वादा अवश्य किया है, लेकिन वह नहीं देगा। यदि पर्वतेश्वर मेरी सहायता करे तो मैं उसे आधा राज्य अवश्य दिला दूंगा। वृद्ध मंत्री ने पर्वतेश्वर को सहमत कर लिया और अपने मंत्री पद से अवकाश ग्रहण कर राक्षस को प्रधानमंत्री बनने का अवसर दे दिया। अब पर्वतेश्वर राजा चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य से सम्बन्ध रखते हुए भी राक्षस द्वारा रचित षड्यन्त्र में भाग लेने लगा, परन्तु चाणक्य के गुप्तचर इतने निपुण थे कि वे सभी समाचार का पता लगा कर चाणक्य को बताते रहे। एक बार राक्षस ने एक विषकन्या भेजी, चाणक्य ने उसे पर्वतेश्वर

की सेवा में भेज दिया, जिसके संसर्ग से वह मृत्यु को प्राप्त किया। इधर चाणक्य ने इस बात का प्रचार करा दिया कि चन्द्रगुप्त का मित्र होने के कारण पर्वतेश्वर को राक्षस ने ही मरवाया है। एक दिन की बात है कि चन्द्रगुप्त के प्रसिद्ध गुप्तचर निपुणक ने पता लगा कर चन्द्रगुप्त से निवेदन किया कि सेठ शकटदास तथा जौहरी चन्दनदास—ये दोनों राक्षस के विश्वासपात्र हैं। राक्षस का परिवार चन्दनदास के घर में ही रहता है। उसने चाणक्य से भी कुछ निवेदन करते हुए कहा कि मैंने चन्दनदास के दरवाजे पर यह अंगूठी प्राप्त की है, जो वास्तव में राक्षस की है।

उस अंगूठी को देख कर चाणक्य को बड़ी ही प्रसन्नता हुई और इसे अपने कार्यसिद्धि का साधन माना। उसने अपने एक गुप्तचर सिद्धार्थक को बुलवाया और उससे कहा कि शकटदास को शूली देने की तैयारी की जा रही है। तुम शीघ्र ही उस वधस्थान की ओर चले जाओ और वधिको को नेत्र के संकेत से प्रकट कर देना, जिससे वे उसे छोड़ देंगे। ऐसा करने से वह शकटदास तुम्हारा उपकार मानेगा। तुम उसे अपने साथ लेकर राक्षस के यहाँ चले जाना, वह तुम पर बहुत प्रसन्न होगा। सिद्धार्थक के चले जाने के बाद चाणक्य ने चन्दनदास को बुलवाया और उससे प्रश्न किया कि राक्षस का परिवार तुम्हारे घर में है?

चन्दनदास ने कहा—नहीं।

चाणक्य के उसे वन्दीगृह में बन्द करा दिया।

इधर राक्षस बड़ा सावधान था। उसने अपने अनेक गुप्तचरों को चन्द्रगुप्त की सेवा में लगा दिया था, जो उसे अवसर पाते ही मार डालें, परन्तु चाणक्य की तीव्र वुद्धि ने राक्षस की सब चालें समझ लीं। उसने पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक को अपने पक्ष में मिला लिया और यह घोषणा कर दी कि चन्द्रगुप्त का आधा राज्य वैरोधक को मिल गया। जब वह चन्द्रगुप्त की हथिनी पर बैठकर राजभवन में प्रवेश कर रहा था तब उसी समय राक्षस के गुप्तचरों ने उसे चन्द्रगुप्त समझ कर मार डाला। इस प्रकार राक्षस की सभी चालें विफल हो गईं।

राक्षस शकटदास के वध तथा चन्दनदास के कारागार में बन्दी का समाचार पाकर बहुत ही चिन्तित था, उसी समय सिद्धार्थक के साथ शकटदास आ गया, जिसे देखकर उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने सिद्धार्थक का उपकार

माना और उन्हें पारितोषिक भी दिया, परन्तु सिद्धार्थक ने कहा कि अभी आप यह अपने निकट ही रखें, समय पर ले लूंगा। सिद्धार्थक ने राक्षस की अंगूठी भी दिखलाई और उससे निवेदन किया कि यह अंगूठी चन्दनदास के दरवाजे पर मिली थी। शकटदास के अनुरोध से सिद्धार्थक ने वह अंगूठी राक्षस को दे दी, जिससे वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। वास्तव में अंगूठी उसे देना आवश्यक था।

इधर राक्षस सोच रहा था कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य में किसी प्रकार कलह हो जाय तो मेरा कार्य सिद्ध हो। जब चाणक्य को इस बात का पता चला, तो उसने नकली कलह करने का विचार किया और चन्द्रगुप्त के द्वारा कौमुदी-महोत्सव की योजना को विफल कर दिया। इसी पर दोनों में कलह हो गया।

चन्द्रगुप्त ने कहा कि 'आपसे अच्छा तो राक्षस मंत्री ही है'।

चाणक्य ने कहा—'ठीक है, राक्षस को ही मंत्री बना लो'।

राक्षस को जब अपने गुप्तचर के द्वारा यह समाचार मिला तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि वह दोनों में कलह तो चाहता ही था।

इधर मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति सन्देह हो गया कि यह चन्द्रगुप्त से मिलना चाहता है। उसके मन में और भी अनेक प्रकार के सन्देह थे। अतः उसने अपने यहाँ से उसे निष्कासित कर दिया और कहा कि तुम यहाँ से प्रसन्नतापूर्वक चन्द्रगुप्त के यहाँ जाकर उसकी सहायता कर सकते हो।

राक्षस सर्वप्रथम चन्दनदास को बचाने के लिए वधस्थान पर पहुँचा और अनुनयपूर्वक कहने लगा कि 'अपराधी मैं हूँ, चन्दनदास नहीं। अतः इन्हें छोड़ दिया जाय और मुझे दण्ड दिया जाय।' उसी समय वहाँ चाणक्य भी आ पहुँचा और चन्द्रगुप्त भी। चाणक्य ने राक्षस को नमस्कार किया और चन्द्रगुप्त ने उसका बहुत सम्मान किया। चाणक्य ने राक्षस से कहा कि 'चन्दनदास इस शर्त पर मुक्त किया जा सकता है, जब तुम चन्द्रगुप्त का मंत्री पद स्वीकार कर लो।' अपने मित्र की प्राणरक्षा के लिए उसने स्वीकृति दे दी। उसी समय मलयकेतु भी बन्दी बनाकर वधस्थान पर लाया गया। चाणक्य ने कहा कि अब मंत्रीपदासीन राक्षस ही इसका निर्णय दें। राक्षस ने कहा—'मैं बहुत समय तक इनके यहाँ रह चुका हूँ। अतः इन्हें प्राणदण्ड न दिया जाय।' राजा चन्द्रगुप्त ने कहा—'इन्हें पैतृक राज्य पर प्रतिष्ठित किया जाय।' अन्त

में चाणक्य ने कहा कि 'इस नये मंत्री की प्रसन्नता में सभी बन्दियों का बन्धन खोल दिया जाय, केवल मेरी शिखा में ही बन्धन रहेगा, क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई।'

चाणक्य ने इस प्रकार कह कर अपनी शिखा बाँध ली।

प्रस्तुत नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्रचित्रण, देश-काल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि समस्त नाटकीय तत्वों से युक्त एक प्रशस्त नाटक है।

(८) कर्पूरमञ्जरी

श्रीराजशेखर द्वारा लिखित नाटकों में 'कर्पूरमञ्जरी' का विशिष्ट स्थान है। यह प्राकृत भाषा में लिखित एक सट्टक है। इसकी कथावस्तु ४ अंकों में आबद्ध है।

इस नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि महाराजा चण्डपाल, महारानी विभ्रमलेखा, विदूषक तथा अन्य सेवक एक स्थान पर बैठे हैं। राजा-रानी वसन्तोत्सव तथा मलयानिल की चर्चा कर रहे हैं। इसी बीच एक सिद्ध योगी भैरवानन्द का प्रवेश होता है। वे कहते हैं कि हम सब कुछ करने में समर्थ हैं, असम्भव को भी सम्भव कर देते हैं—चन्द्रमा को पृथ्वी पर ला सकते हैं, सूर्य के रथ को रोक सकते हैं इत्यादि। यह सुनकर विदूषक कहता है कि योगीराज ! यदि आप सर्वसमर्थ हैं, तो यहाँ विदर्भ-राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी को ला दें।

भैरवानन्द ने अपने हाथ में एक मोरपंख लिया और ध्यान करके ज्यों ही हिलाया त्यों ही कर्पूरमञ्जरी उपस्थित हो गई। उसके सौन्दर्य को देख कर सभी मुग्ध हो गये। रानी ने सिद्ध योगी से कहा—'महात्माजी, कुछ समय के लिए कर्पूरमञ्जरी को मेरे साथ रहने दीजिए'।

भैरवानन्द ने रानी की बात को सहर्ष स्वीकार किया।

महाराजा चण्डपाल कर्पूरमञ्जरी के रूप पर मोहित हो गये और उसके वियोग में दुःखी रहने लगे। विदूषक ने राजा से कहा—'महाराज ! कदली-गृह में आज महारानीजी गौरीपूजा करने के बाद कर्पूरमञ्जरी को झूला पर बैठा कर झुलायेंगी, आप उन्हें आनन्दपूर्वक देख सकते हैं। तदनन्तर महाराज कदलीगृह में चले गये, कर्पूरमञ्जरी को झूला झूलते हुए देखा। तत्पश्चात्

झूले से उतर कर उसने कुरवक का आलिंगन किया, तिलक को तिरछी निगाहों से देखा और अशोक पर पादप्रहार किया, जिससे उनकी दोहद इच्छा पूरी हो।

इसके पश्चात् वह रानी के साथ अन्तःपुर में चली गई।

महाराजा ने उस रात एक स्वप्न देखा कि कर्पूरमञ्जरी उनकी शय्या पर आयी है। उन्होने ज्यों ही उसका आलिंगन करना चाहा, वह हाथ छुड़ाकर भाग गई। उसी रात विदूषक ने भी एक सपना देखा कि महाराजा गले में मोती का हार पहने हुए रानी का आलिंगन कर रहे हैं। राजा को पता लगा कि जिस प्रकार वे कर्पूरमञ्जरी के प्रेम में विकल हैं, वैसे ही वह भी व्याकुल है। एक दिन एकान्त में दोनों मिले। जब रानी को इस बात का पता चला, तब उन्होंने कर्पूरमञ्जरी पर कठोर नियंत्रण करके पहरा बैठा दिया।

एक दिन राजा उदास बैठे थे। उसी समय रानी के द्वारा प्रेषित एक दूती ने उन्हें शुभ समाचार दिया कि उनका शीघ्र ही घनसारमञ्जरी से विवाह होने वाला है। राजा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि स्पष्ट रूप से कहो कि क्या बात है। तब दूती ने कहा कि रानी के द्वारा गौरी की पूजा कराने के पश्चात् भैरवानन्द योगी ने रानी से यही दक्षिणा माँगी है कि तुम अपने राजा का विवाह घनसारमञ्जरी से करा दो। इस विवाह के पश्चात् ही तुम्हारे राजा चक्रवर्ती नरेश हो जायेंगे, तब प्रसन्नता में मुझे प्रचुर दक्षिणा प्राप्त हो जायेगी। उस योगीराज को महारानी ने स्वीकृति दे दी है।

विवाह-कार्य प्रारम्भ हुआ। पुरोहित ने राजा से कहा—आप अपने दाहिने हाथ से इस कन्या कर्पूरीमञ्जरी का दाहिना हाथ पकड़े।

रानी ने कहा—कर्पूरमञ्जरी कहाँ है ? यह तो घनसारमञ्जरी है।

पुरोहित ने कहा—केवल नाम का पर्याय है। घनसारमञ्जरी ही कर्पूरमञ्जरी है।

राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह सम्पन्न हो गया। योगीराज भैरवानन्द को उन्होंने दक्षिणा में १०० गाँव दिये।

प्रस्तुत सट्टक (नाटक) कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्रचित्रण, देशकाल भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि सभी नाटकीय तत्त्वों से युक्त एक प्रशस्त सट्टक है।

(९) प्रसन्नराघव

श्रीजयदेव द्वारा लिखित नाटकों में 'प्रसन्नराघव' नामक नाटक का विशिष्ट स्थान है। इस नाटक की कथावस्तु ७ अंकों में आबद्ध है। इस नाटक का आधार रामायण की कथा है, जो कुछ परिवर्तन के साथ अंकित है। इन नाटक के आरम्भ में हम देखते हैं कि मिथिला के राजा जनक अपनी पुत्री सीता के विवाह के लिए स्वयंवर कर रहे हैं। उसमें शर्त यह है कि जो भगवान् शिव के पिनाक पर प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, उसी के साथ सीता का विवाह होगा। इस स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए देश-देश के राजा-महाराजाओं को निमन्त्रित किया गया। वे स्वयंवर में आने लगे, कुछ राजा-महाराजा निमन्त्रण न पाकर केवल सुनकर ही वहाँ आ गये। इतने में मनुष्य रूप धारण करके लंकेश रावण भी वहाँ आ गया। उसने वहाँ के चारणों से कहा कि मुझे पहले कन्या दिखाओ, तत्पश्चात् धनुष। कन्या देखने के बाद ही मैं धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर धनुर्भंग करूँगा। रावण ने अट्टालिका पर विराजमान सीता को देखा और उनके सौन्दर्य से प्रभावित हो गया। उसने तोड़ने का प्रयास किया, परन्तु सफल न हो सका। अतः अपने मन में उसने धनुष निश्चित किया कि सीता का अपहरण करके लंका ले चलूँ। इतने में पाताल-लोक का बाणासुर आ गया। उसने भी धनुष उठाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह भी असफल रहा। तत्पश्चात् रावण-बाणासुर दोनों में विवाद होने लगा। अन्त में बाणासुर चला गया और रावण पुनः सीताहरण की बात सोचने लगा, तभी उसे मारीच का आर्तनाद सुनाई दिया और वह उसे सान्त्वना देने के लिए वहाँ से चला गया।

गुरु विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के समय राम ने ताड़का-पुत्र मारीच को बिना फर के बाण से मारा था, जो सौ योजन पार कर समुद्र के पार गिरा था; वहीं जोर से चिल्लाया था, जिसे रावण ने सुना।

गुरु विश्वामित्र भी निमन्त्रित होकर राम तथा लक्ष्मण के साथ धनुष-यज्ञ देखने के लिए जनकपुर आ गये और वे एक अमराई में ठहरे। वहाँ एक पुष्पवाटिका थी और तालाब के निकट ही चण्डिका देवी का भव्य मन्दिर था। राम तथा लक्ष्मण दोनों चण्डिका देवी का दर्शन कर उस वाटिका में गुरुजी की पूजा-हेतु पुष्प लेने लगे। उसी समय सीता माता की आज्ञा से

चण्डिका देवी की पूजा करने गई। राम ने सीता को और सीता ने राम को देखा और दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गये।

महाराजा जनकजी को जब विश्वामित्र के आगमन का समाचार मिला तो वे अपने पुरोहित सदानन्दजी के साथ अमराई में जाकर उनका स्वागत-सत्कार किये और राम-लक्ष्मण को देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। उसी समय परशुरामजी के द्वारा प्रेषित एक मुनि वहाँ उपस्थित होकर राजा जनकजी से उनका सन्देश कहने लगे कि 'राजन्! आप किसी राजकुमार के साथ सीता का विवाह कर दें, धनुष उठाने या तोड़ने की प्रतिज्ञा से आप विरत हो जायें, अन्यथा आप मेरे द्वारा दण्डनीय होंगे।'

राजा ने उस मुनि को उत्तर दिया कि जाकर परशुरामजी से कह दें कि 'मेरा प्रण ही ऐसा है, उससे मैं विरत कैसे हो सकता हूँ'। गुरु विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण रंगभूमि में पहुँचे, जहाँ देश-देश के राजकुमार उपस्थित थे। महाराजा जनकजी ने उन्हें सुन्दर मञ्च पर बैठाया। राजा-महाराजा धनुष के निकट जाते थे, परन्तु वे सभी उसे उठाने में असमर्थ रहे। महाराजा जनकजी निराश हो गये कि मालूम होता है कि मेरी कन्या कुमारी रह जायेगी। उसी समय गुरु की आज्ञा से राम ने विना प्रयास के उस शिवधनुष को उठाया और तोड़कर दो टुकड़ा कर दिया। महाराजा जनक, गुरु विश्वामित्र आदि सभी बड़े ही प्रसन्न हुए। गुरु विश्वामित्र ने जनकजी से कहा कि महाराजा दशरथ के चार पुत्रों में ये राम सबसे बड़े हैं। अतः राजन्! राम का विवाह सीता के साथ, भरत का विवाह माण्डवी के साथ, लक्ष्मण का विवाह उर्मिला के साथ तथा शत्रुघ्न का विवाह श्रुतकीर्ति के साथ कर दे। महाराजा जनकजी ने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

मुनि के द्वारा जब परशुरामजी को विदित हुआ कि महाराजा जनकजी अपनी प्रतिज्ञा से विरत नहीं हो रहे हैं, तब वे क्रोधित होकर मिथिला पहुँच गये और देखा कि धनुष टूटा हुआ है। उन्होंने अत्यन्त क्रोध से मिथिलानरेश से पूछा कि यह शिवधनुष किसने तोड़ा है? यह सुनकर महाराजा जनकजी तो स्तब्ध रह गये, परन्तु गुरु सदानन्द के शिष्य ताण्डचायन ने कहा—'रा'। परशुरामजी केवल अधूरा नाम सुनकर समझ गये कि रावण ने तोड़ा है। वे रावण को मारने चले, परन्तु उन्हें ज्ञात हुआ कि रावण ने नहीं बल्कि राम ने तोड़ा है। वे राम से युद्ध करने को तैयार हो गये। राम अपना वैष्णव धनुष

लेकर युद्धभूमि में आये। परशुरामजी को जब विदित हुआ कि वैष्णव धनुष धारण करने वाले राम विष्णु के अवतार हैं, तब वे उनकी स्तुति कर तपस्या हेतु महेन्द्रगिरि पर चले गये।

भगवान् राम विवाह के बाद अयोध्या आये। सौतेली माँ कैकेयी के कहने से वह १४ वर्ष के लिए वनवासी हुए, उनकी पत्नी सीता तथा भाई लक्ष्मण ने भी उनका साथ दिया। राम के वियोग में महाराजा दशरथ ने शरीर का त्याग कर दिया। उस समय भरतजी ननिहाल चले गये थे। गुरु वशिष्ठजी ने उन्हे बुलवाया। उन्होंने अन्त्येष्टि क्रिया की, तत्पश्चात् अपने भाई राम के न आने तक नन्दिग्राम में आसन लगाकर राजकाज सम्भाला। इधर राम शृंगवेरपुर, प्रयाग, चित्रकूट होते हुए पञ्चवटी पहुँचे। वहीं लंकेश की भगिनी शूर्पणखा की नाक कटी, मारीच का वध हुआ, लंकेश रावण ने छलपूर्वक सीता का हरण किया। वहीं पर रावण तथा गृद्धराज जटायु का युद्ध भी हुआ। सीता का पता लगाते हुए राम किष्किन्धा पहुँचे। वहीं हनुमान्जी से परिचय, सुग्रीव से मैत्री, बालि-वध तथा सुग्रीव का राज्यतिलक हुआ। वहीं से हनुमान्-जी सीताजी का पता लगाने समुद्र लाँघकर लंका गये। उन्होंने सीता से बात-चीत की, लंकादहन किया, पुनः किष्किन्धा में आकर भगवान् राम से सीता का समाचार कहा। वानरी सेना लेकर राम समुद्र के किनारे पहुँचे। यहीं लंकेश का भाई विभीषण राम का शरणागत बना। वानरों की सहायता से समुद्र पर पुल का निर्माण कर राम ने सेना के साथ लंका के सुवेल पर्वत पर आसन जमाया। लंका में राम-रावण की सेना तथा दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध के ही समय रावण-पुत्र मेघनाद ने लक्ष्मण के ऊपर शक्तिबाण का प्रयोग किया, जिससे वे मूर्च्छित हो गये। हनुमान्जी द्रोणाचल से संजीवनी जड़ी ले आये, जिससे वे स्वस्थ हुए। बाद में युद्धभूमि में लक्ष्मण ने मेघनाद का वध किया और राम ने रावण के भाई कुम्भकर्ण तथा लंकेश रावण का वध किया। विभीषण लंका का राजा बना, सीता का उद्धार हुआ। सीताजी ने हनुमान् को न देखकर लक्ष्मण से पूंछा कि वह वानर कहाँ है, जो मेरा पता लगाने आया था। लक्ष्मणजी ने कहा कि वे विजय का समाचार देने के लिए अयोध्या गये हैं। थोड़ी ही देर में राम पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या आ गये। वे विमान से उतर कर सभी से यथायोग्य मिले। अयोध्या में बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

प्रस्तुत नाटक कथावस्तु, कथोपकथन, देश-काल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि समस्त एकांकी तत्त्वों से पूर्ण एक सफल नाटक है।

रामायण : सुन्दरकाण्ड

(सर्ग ७ से ९ पर्यन्त)

संस्कृत-हिन्दी अनुवाद

संस्कृत : घोरं प्रस्थानकाले स जगर्ज हनुमान् कपिः ।
तेन निश्चरनारीणां गर्भस्त्रवावभूविरे ॥

हिन्दी : चलत महाधुनि गर्जसि भारी ।
गर्भ स्त्रवहिं सुनि निसिचर नारी ॥

संस्कृत : पारावारं समुल्लङ्घ्य परपारं समागतः ।
कपिन् किलकिलारावं श्रावयामास मारुतिः ॥

हिन्दी : नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा ।
शब्द किलकिला कपिन्ह सुनावा ॥

संस्कृत : हनुमन्तं समालोक्य हर्षेण कपयोऽखिलाः ।
पुनरात्मशरीराणि सञ्जीवानीव मेनिरे ॥

हिन्दी : हरपे सब बिलोकि हनुमाना ।
नूतन जनम कपिन्ह तब जाना ॥

संस्कृत : मुखप्रसादमालोक्य सर्वे कीशा हनुमतः ।
तं निश्चयेन हृदये कृतकार्यं च मेनिरे ॥

हिन्दी : मुख प्रसन्न मन तेज बिराजा ।
कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ॥

संस्कृत : समाश्लिष्य हनुमन्तं प्रसेदुर्वानरास्त्विमे ।
मीना वैकल्यमापन्ना वारिणी जीविता इव ॥

हिन्दी : मिले सकल अति भये सुखारी ।
तलफल मीन पाव जिमि बारी ॥

संस्कृत : वदन्तश्चानुयुञ्जाना इतिहासमिमंस्ततः ।
प्रस्थिता रामचन्द्रस्य समीपे तु मुदान्विताः ॥

हिन्दी : चले हरषि रघुनायक पासा ।
पूछत कहत नवल इतिहासा ॥

संस्कृत : अङ्गदेन सनाथास्ते गत्वा मधुवनान्तरे ।
निर्भया चखदुस्तस्य कामं स्वादु फलानि च ॥

हिन्दी : तब मधुबन भीतर सब आये ।
अंगद सम्मत मधु फल खाये ॥

संस्कृत : रोधं प्रवृत्ता ये तत्र वाटिका रक्षकास्तदा ।
मुष्टिभिः प्रहृतास्तेऽपि पलायाश्चक्रिरे ततः ॥

हिन्दी : रखवारे जब बरजन लागे ।
मुष्टि प्रहार हनत सब भागे ॥

संस्कृत : गत्वा निवेदयामासुस्ते सुग्रीवकपीश्वरम् ।
स्वामिन् मधुवनध्वंसो युवराजेन कारिता ॥
तेषां गिरं समाकर्ण्य सुग्रीवो मुमुदे भृशम् ।
ज्ञात्वेति कपयः प्रोक्ताः कृतकार्या न संशयः ॥

हिन्दी : जाइ पुकारे ते सब बन उजार जुवराज ।
सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आये सब काज ॥

संस्कृत : यदि सीतां न जानीयुरिमे नूनं प्लवङ्गमाः ।
कदापि शक्नुयुर्नैव भोक्तुं मधुवनं फलम् ॥

हिन्दी : जो न होत सीता सुधि पाई ।
मधुबन के फल सकहिं कि खाई ॥

संस्कृत : सुग्रीवे चिन्तयत्येव कपियूथमुपागतम् ।
कृतप्रणामं दृष्ट्वा तत् परिरेभे कपीश्वरः ॥

हिन्दी : एहि विधि मन विचार कर राजा ।
आइ गये कपि सहित समाजा ॥

संस्कृत : अथ पप्रच्छ सुग्रीवः कुशलं तान् महान्कपीन् ।
ऊचुस्ते कुशलं स्वामिन् भवदङ्घ्रिनिरीक्षणात् ॥

हिन्दी : पूछी कुसल कुसल पद देखी ।
रामकृपा भा काज बिसेखी ॥

संस्कृत : सिद्धं कार्यमपि स्वामिन् श्रीरामानुग्रहेण च ।
हनुमता कृतं कृत्यं प्राणा नः परिरक्षिताः ॥

हिन्दी : नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना ।
राखे सकल कपिन्ह के प्राना ॥

संस्कृत : एवं निशम्य सुग्रीवः परिरेभे पुनश्च तम् ।
वायुसूनुं ततो रामान्तिकं यातुं प्रचक्रमे ।।
हिन्दी : सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ ।
कपिन्ह सहित रघुपति पहँ चलेऊ ।।
संस्कृत : रामो विलोकयामास कृतकार्यान्कपीन् यदा ।
विशेषेण तदैवासीत्स्वान्ते हर्षं समन्वितः ।।
हिन्दी : राम कपिन जब आवत देखा ।
किये काज मन हरष बिसेखा ।।
संस्कृत : स्फटिकफलके यत्र समासीनौ रघूद्वहौ ।
निपेतुः पदयोस्तत्र गत्वा सर्वे वलीमुखाः ।।
हिन्दी : फटिक सिला बैठे दोउ भाई ।
परे सकल कपि चरनन्हि जाई ।।
संस्कृत : आश्लिष्य रामस्तान्प्रीत्या पप्रच्छ कुशलं तदा ।
त ऊचुः कुशलांश्चाद्य भवत्पादावलोकनात् ।।
हिन्दी : प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुना पुंज ।
पूछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ।।
संस्कृत : जाम्बवान् व्याजहारैवं श्रूयतां रघुनन्दन ।
निरन्तरं स कुशली तस्मिन्ननुकम्पसे ।।
ख्यातः स एव लोकेषु विनीतो गुणसागरः ।
तस्योपरि प्रसीदन्ति सर्वे सुरनरर्षयः ।।
हिन्दी : जामवन्त कह सुनु रघुराया ।
जा पर नाथ करहु तुम दाया ।।
ताहि सदा सुभ कुसल निरन्तर ।
सुर नर मुनि प्रसन्नता अपर ।।
संस्कृत : अद्य कार्यं सुसम्पन्नं कृपयैव तव प्रभो ।
एतस्य जन्मनश्चाद्य साफल्यमपि संवृतम् ।।
हिन्दी : प्रभु की कृपा भयउ सब काजू ।
जन्म हमार सफल भा आजू ।।
संस्कृत : भोः प्रभो हनुमत्कर्म वक्तुं न क्षमः ।
चरित्रं वायुपुत्रस्य कथमस्मद्विधो जनः ।।

हिन्दी : नाथ पवनसुत कीन्ह जो करनी ।
सहसहु मुख न जाइ सो बरनी ॥

संस्कृत : एवं जाम्बवता प्रोक्तं श्रुत्वा रामो दयानिधिः ।
हनुमन्तं पुना रामो परिरभ्य हृदाऽब्रवीत् ॥

हिन्दी : पवनतनय के चरित सुहाये ।
जाम्बवन्त रघुपतिहिं सुनाये ॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाये ।
पुनि हनुमान हृदय हँसि लाये ॥

संस्कृत : ब्रूहि तात महाभाग कथं जनकनन्दिनी ।
विधत्ते रक्षसां मध्ये प्राणत्राणं मम प्रिया ॥

हिन्दी : कहहु तात केहि भाँति जानकी ।
रहति करति रक्षा स्वप्रान की ॥

संस्कृत : यामिको भवतां नाम कपाटं ध्यानमेव च ।
स्वपादालोकनं यन्त्रं कृत्वात्मासून् रुणद्धि सा ॥

हिन्दी : नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निजपद यंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट ॥

संस्कृत : अयं चूडामणिर्दत्तो गन्तुकामाय मे तदा ।
जग्राह तं स्वयं रामः स्थापयामास वक्षसि ॥

हिन्दी : चलत मोहिं चूडामनि दीन्हीं ।
रघुपति हृदय लाइ सो लीन्हीं ॥

संस्कृत : मारुतिः पुनराहस्तं प्रयाणाभिमुखे मयि ।
साश्रु साञ्जलि जानक्या शोकेनेदं निवेदितम् ॥
मम प्रतिनिधिर्भूत्वा सानुजस्य दयानिधेः ।
श्रीरामस्य पदं स्पृष्ट्वा त्वं निवेदय मारुत ॥
दीनबन्धो दयासिन्धो प्रणतार्तिविनाशकः ।
कर्मणा मनसा वाचाऽनुरक्ता मां किमत्यजः ॥

हिन्दी : नाथ जुगल लोचन भरि बारी ।
बचन कहे कछु जनककुमारी ॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना ।
दीनबन्धु प्रनतारति हरना ॥

मन क्रम बचन चरन अनुरागी ।
केहि अपराध नाथ हौं त्यागी ।।

संस्कृत : अवश्यमेको दोषोऽस्ति मम जानामि हे प्रभो ।
भवद्वियोगमासाद्य यन्मे प्राणा न निर्गता ।।
तत्रापराधो मे नास्ति नेत्रयोरनयोश्च सः ।
सावधानतया स्वामिन् तद्वृत्तं श्रूयतामिदम् ।।

हिन्दी : अवगुन एक मोर मैं माना ।
बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ।।
नाथ सो नयनन्ह कर अपराधा ।
निसरत प्रान करत हठ बाधा ।।

संस्कृत : विरहाग्निस्तनुं तूलं श्वासमारुतिसारथिः ।
दग्धं प्रवर्तते यावत्तस्त्वद्दर्शनोत्सुके ।।
चक्षुषी स्रवतो वारि स्वार्थसाधनतत्परे ।
येन दग्धुं वपुर्नैव शक्नुयाद्विरहानलः ।।

हिन्दी : विरह अगिनि तनु तूल समीरा ।
स्वाँस जरइ छन माँहि सरीरा ।।
नयन स्रवहिं जल निज हित लागी ।
जरैं न पाव देह बिरहागी ।।

संस्कृत : श्रीराम जानकी जाने करुणावरुणालये ।
सीता विपत्ति महती वरमव्याहृता किल ।।

हिन्दी : सीता की अति बिपति बिसाला ।
बिनहिं कहे भलि दीनदयाला ।।

संस्कृत : निमेषमात्रमप्यास्याः कल्पतुल्यो निवर्तते ।
तूर्णं यात्वानयेनां त्वं जित्वा हत्या खलान् बलात् ।।

हिन्दी : निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति ।
बेगि चलिय प्रभु आनिय भुज बल खल दल जीति ।।

संस्कृत : निशम्य जानकीदुःखं रामस्य सुखसद्मनः ।
नलिने इव सन्नेत्रे जलपूर्णं बभूवतुः ।।
पुनर्विचारयामास मनोवाक्कायकर्मभिः ।
मद्गतिर्या सदा साध्वी स्वप्नेऽपि विपदीदृशी ।।

हिन्दी : सुनि सीता दुख प्रभु सुख अपना ।
भरि आये जल राजिव नयना ॥
वचन काय मन मम गति जाही ।
सपनेहु बूझिय बिपति की ताही ॥

संस्कृत : उवाच हनुमान् भूयो पदार्चा न पूजनम् ।
सम्पद्येत तदा स्वामिन् विपत्तिर्नो विपद्विपत् ॥

हिन्दी : कह हनुमन्त बिपति प्रभु सोई ।
जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

संस्कृत : वैरिणं रावणं जित्वा नीयतां जानकी प्रभो ।

हिन्दी : केतिक बात प्रभु जातुधान की ।
रिपुहि जीति आनिये जानकी ॥

संस्कृत : उवाच रामो हनुमन् न त्वद्गुपकारकः ।
शरीरी दृश्यते कोऽपि नरामरमुनिष्वपि ॥
कपे प्रत्युपकारं ते कथं कुर्यामहं तव ।
त्वत्सम्मुखे मुखं चाद्य भवितुं मे न शक्नुयात् ॥

हिन्दी : सुनु कपि तोहि समान उपकारी ।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा ।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

संस्कृत : विचार्यं मनसि ज्ञातं हनुमन् शृणु साम्प्रतम् ।
अनृणो न कदाप्यस्मि त्वत्तोऽस्मीति विनिश्चितम् ॥
पुनर्पुनर्वदन्नेवं कपिं पश्यन् रघूद्वहः ।
सनीरनीरजाक्षः सन् रोमाञ्चिततनुरभूत् ॥

हिन्दी : सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं ।
देखउँ करि बिचार मन माहीं ॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता ।
लोचन नीर पुलक अति गाता ॥

संस्कृत : हनुमत्शिरसि न्यस्तं रामेण करपङ्कजम् ।
संस्मृत्य तां दशामिशो संज्ञाहीनोऽभवत्तदा ॥

हिन्दी : प्रभु कर पंकज कपि के सीसा ।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥

संस्कृत : भूतः ससंज्ञोऽथ शिवः प्रारेभे कथितुं कथाम् ।
उमे रामः समुत्थाप्य परिरेभे हनुमता ।।

हिन्दी : सावधान मन करि पुनि संकर ।
लागे कहन कथा अति सुन्दर ।।
कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा ।

संस्कृत : उपवेश्यान्तिके प्राक्षीत्कपे रक्षः प्ररक्षिताम् ।
अधाक्षीः केन विधिना लङ्कां दुर्गदुरासदाम् ।।

हिन्दी : कर गहि परम निकट बैठावा ।
कहु कपि रावन पालित लंका ।।
केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका ।

संस्कृत : प्रसन्नं राघवं मत्वाऽगर्वो मारुतिरब्रवीत् ।
शाखाचङ्क्रमणं शाखामृगाणां कर्म चेरितम् ।।
समुद्रोल्लङ्घनं लङ्कां दग्ध्वा रक्षो विनाशनम् ।
वनध्वंसश्च भवतां प्रतापो नास्ति मामकम् ।।

हिन्दी : प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला बचन बिगत अभिमाना ।।
साखामृग की बड़ि मनुसाई । साखा ते साखा पर जाई ।।
नाघि सिन्धु हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ।।
सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछू मोर प्रभुताई ।।

संस्कृत : दुष्करं तस्य नैवास्ति यस्मिंस्त्वमनुकम्पसे ।
वडवाग्निं दहेत्तूलः प्रतापात्तव भो प्रभो ।।

हिन्दी : ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं जापर तुम अनुकूल ।
तव प्रताप वडवानलहिं जारि सकै खलु तूल ।।

संस्कृत : अतिशर्मप्रदा भक्तिर्या तवास्त्यनपायिनी ।
श्रीरामचन्द्र तामेव कृपया त्वं प्रदेहि मे ।।

हिन्दी : नाथ भगति अति सुखदायिनी ।
देहु कृपा करि अनपायिनी ।।

संस्कृत : अतीव सरलां वाणीं रामः श्रुत्वा हनुमतः ।
अपरां एवमेवास्तु रामः प्रोवाच सादरम् ।।

हिन्दी : सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी ।
एवमस्तु तब कहेउ भवानी ।।

संस्कृत : ज्ञातरामस्वभावस्य जनस्य भजनादृते ।
असारे देवि संसारे वस्तु भाति न किञ्चन ॥

हिन्दी : उमा रामस्वभाव जेहि जाना ।
ताहि भजन तजि भाव न आना ॥

संस्कृत : य एवं रामहनुमत्संवादं हृदि धारयेत् ।
श्रीरामचरणाम्भोजदृढभक्तिं स चाप्नुयात् ॥

हिन्दी : यह संवाद जासु उर आवा ।
रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥

संस्कृत : निशम्य रामवचनं सर्वे कीशगणास्तदा ।
ऊचुर्जयजयानन्दकन्द राम कृपानिधि ॥

हिन्दी : सुनि प्रभु वचन कहहिं कपिबृन्दा ।
जय जय जय कृपाल सुखकन्दा ॥

संस्कृत : समाहूय ततो रामः सुग्रीवं वानराधिपम् ।
कथयामास भो मित्र वचनं मम श्रूयताम् ॥
अविलम्बेन लङ्कायां गन्तुं सज्जीभवाधुना ।
किं कारणं विलम्बस्य कपीनीत्थं समादिश ॥
दृष्ट्वैवेदं कौतुकं सर्वे वृष्टोः सुमनसा दिवः ।
कृत्वा सुमनसो हर्षात्स्वस्वस्थानं प्रतस्थिरे ।

हिन्दी : तब रघुपति कपिपतिहिं बुलावा ।
कहा चले कर करहु बनावा ॥
अब बिलम्ब केहि कारन कीजै ।
तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजै ॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी ।
नभ ते भवन चले सुर हरषी ॥

संस्कृत : नानावर्णाऽतुलबला कपिभालुगणास्तथा ।
सुग्रीवेण समाहूता सर्वे तत्र समागताः ॥

हिन्दी : कपिपति बेगि बुलाये आये जूथप जूथ ।
नाना बरन अतुल बल वानर भालु बरूथ ॥

संस्कृत : प्रणम्य रामपादाब्जं ते गर्जन्ति महाबलाः ।
दृष्ट्वा कृपाकटाक्षेण श्रीरामेण च ते तदा ॥

हिन्दी : प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा ।
बानर भालु महाबल कीसा ।।
देखी राम सकल कपिसेना ।
चितइ कृपा करि राजीव नैना ।।

संस्कृत : श्रीरामकरुणादृष्टया बलवीर्यसमन्विताः ।
अभूवन् ऋक्षकपयः सपक्षा पर्वता इव ।।
ततः प्रतस्थे श्रीरामो दशाननजिगीषया ।
शकुनानि तथाऽभूवन् शुभानि सुखदानि च ।।

हिन्दी : राम कृपा बल पाइ कपीन्दा ।
भये पच्छ पुत मनहु गिरीन्दा ।।
हरषि राम तब कीन्ह पयाना ।
सगुन भये सुन्दर सुभ नाना ।।

संस्कृत : प्रयाणे रामचन्द्रस्य शकुनान्यभवन् प्रिये ।
नीतिः शाश्वतिका ह्येषा मङ्गलायतनो हि सः ।।
अदृष्टमश्रुतं यानं श्रीरामस्य महात्मनः ।
स्ववामाङ्गपरिस्पन्दः सीता ज्ञानवती सती ।।

हिन्दी : जासु सकल मंगलमय कीती ।
तासु पयान सगुन यह नीती ।।
प्रभु पयान जाना बैदेही ।
फरकि बाम अंग जनु कहि देही ।।

संस्कृत : तदङ्गस्फुरणं चासीत् जानक्याः शुभसूचकम् ।
रावणस्य तदेवासीत् तदेवाशुभसूचकम् ।।

हिन्दी : जोइ जोइ सगुन जानकिहिं होई ।
असगुन भयउ रावनहिं सोई ।।

संस्कृत : एवंविधं तटं राम आससाद दयानिधिः ।
यत्र तत्र फलान्याहुः सैनिका ऋक्षवानराः ।।

हिन्दी : एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागरतीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपिबीर ।।

संस्कृत : यत आरभ्य हनुमाँल्लङ्कां दग्ध्वा समागतः ।
ततः प्रभृति रक्षांसि वसन्ति स्म सशङ्कया ।।

हिन्दी : उहाँ निसाचर रहहिं ससंका ।
जव ते जारि गयउ कपि लंका ।।

संस्कृत : रक्षःकुलस्य न क्षेममिति सर्वे व्यचिन्तयन् ।
यस्याकथ्यवलो दूतः क्व हितं नस्तदागमे ।।

हिन्दी : निज निज गृह सब करहिं विचारा ।
न हि निसिचर कुल केर उबारा ।।
जासु दूत बल वरनि न जाई ।
तेहि आये पुर कवन भलाई ।।

संस्कृत : चरेभ्यः पौरगाः श्रुत्वा मन्दोदर्यतिव्याकुलाः ।
उवाच स्वपतिं नत्वा साञ्जलिर्नीतियुक् वचः ।।

हिन्दी : दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी ।
मन्दोदरी अधिक अकुलानी ।।
रहसि जोरि कर पति पग लागी ।
बोली बचन नीति रस पागी ।।

संस्कृत : कान्तावधार्यं मे वाचं विरोधं त्यज विष्णुना ।
श्रुत्वा यच्चरकर्माणि स्रवद्गर्भाः पुरस्त्रियः ।।

हिन्दी : कन्त करष हरि सन परिहरहू ।
मोर कहा अति हित हिम धरहू ।।
समुझत जासु दूत कर करनी ।
स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ।।

संस्कृत : यदीच्छसि हितं कान्त समाहूय स्वमन्त्रिणः ।
श्रीरामसन्निधावद्य सीतां प्रेषय मा चिरम् ।।

हिन्दी : तासु नारि निज सचिव बोलाई ।
पठवहु कन्त जो चहहु भलाई ।।

संस्कृत : श्रूयतां मद्वचः स्वामिन् तव सीतार्पणं विना ।
ईशते न हितं कर्तुं ब्रह्मरुद्रादयोऽमराः ।।

हिन्दी : सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें ।
हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ।।

संस्कृत : रक्षो भेककुलं यावत् रामचन्द्रशराह्वयः ।
ग्रसेयुर्नैव तावत्त्वं चर यत्नं हठं त्यज ।।

हिन्दी : रामबान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक ।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतन करहु तजि टेक ॥

संस्कृत : श्रवणाभ्यां समाकर्ण्य मन्दोदर्युपदेशनम् ।
जगत्यहन्युर्विख्यातो जहास रावणः शठः ॥

हिन्दी : श्रवन सुनी सठ ताकर बानी ।
बिहँसा जगत बिदित अभिमानी ॥

संस्कृत : नूनं स्त्रीणां मनो भीरुर्यन्मङ्गल उपस्थिते ।
कान्ते स्वान्तेऽद्य कार्पण्यं ते जातिमतिरब्रवीत् ॥

हिन्दी : सभय सुभाव नारि कर साचा ।
मंगल महुँ भय मन अति काचा ॥

संस्कृत : वनेचराणां यूथं चेदागच्छेदद्य भामिनि ।
क्षुत्क्षामा राक्षसा जग्ध्वा जीवेयुर्नात्र संशयः ॥

हिन्दी : जो आवइ मर्कट कटकाई ।
जियहिं बिचारे निसिचर खाई ॥

संस्कृत : एजन्ते यद्भवाल्लोकपाला त्रस्यत्तदाङ्गना ।
हास्यमेतदिति प्रोच्य परिरेभे विहस्य ताम् ॥
अतिस्नेहं दर्शयित्वा संसदं प्रस्थितः पुनः ।

हिन्दी : कंपहिं लोकप जाकी त्रासा ।
तासु नारि सभीत बडि हासा ॥
अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई ।
चलेउ सभा ममता अधिकाई ॥

संस्कृत : मन्दोदरीहृदयचिन्ता वामताऽगमद्विधिः ॥

हिन्दी : मन्दोदरी हृदय कर चिन्ता ।
भयउ कन्त पर बिधि बिपरीता ॥

संस्कृत : सिन्धुपारगता सेना सभासंस्थो दशाननः ।
श्रुत्वा रामस्य पप्रच्छ स्वमन्त्रिगणस्तथा ॥
ते सर्वेऽकथयन् तूष्णीं स्थीयतां राक्षसेश्वर ।
सुरासुरविजेताऽसि क एते नरवानराः ॥

हिन्दी : बैठेउ सभा खबर अस पाई ।
सिन्धु पार सेना सब आई ॥

बूझेसि सचिव उचित मत कहेहू ।
ते सब हँसे मस्ट करि रहेहू ॥
जितेहु सुरासुर तव श्रम नाहीं ।
नर बानर केहि लेखे माहीं ॥

संस्कृत : मन्त्री वैद्यो गुरुश्चैते भवेयुः प्रियवादिनः ।
राष्ट्रविग्रहधर्माणामाशु नाशस्तदा भवेत् ॥

हिन्दी : सचिव बैद्य गुर तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥

संस्कृत : रावणस्य सभामध्ये दृश्यते तादृशी दशा ।
वदन्ति सभया सभ्यास्तन्मनोऽनुगुणानपि ॥

हिन्दी : सोइ रावन कहँ बनी सहाई ।
अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥

संस्कृत : अथ तस्मिन्नवसरे लघुभ्राता विभीषणः ।
तत्रागत्य नमश्चक्रे ज्यायीभ्रातुः पदे मुदा ॥

हिन्दी : अवसर जानि विभीषण आवा ।
भ्राता चरन सीस तेहि नावा ॥

संस्कृत : उपविश्यासने स्वीये तदादिष्टोऽब्रवीदिदम् ।
यदि पृच्छसि वक्ष्यामि हितं तात यथामति ॥

हिन्दी : पुनि सिर नाइ बैठि निज आसन ।
बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जो कृपालु पूछेहु मोहिं बाता ।
मति अनुरूप कहहुँ हित ताता ॥

संस्कृत : सुमतिं सुगतिं कीर्तिं कल्याणं कानि चेच्छता ।
चतुर्थीन्दुरिवादृश्यं परकान्ताननं प्रभो ॥

हिन्दी : जो आपन चाहै कल्याना । सुमति सुजस संपति सुख नाना ॥
सो पर नारि लिलार गोसाईं । तजिय चौथि चंदा की नाईं ॥

संस्कृत : कामः क्रोधो मदो लोभ एते निरयका यथा ।
भज रामं हितधिया विशेषवचनं श्रृणु ॥

हिन्दी : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि संत ॥

संस्कृत : रामो न नरभूपालः कालकालश्च भूपतिः ।
ब्रह्मानादिरनन्तोऽयं व्यापको भगवानजः ॥
हिन्दी : तात राम नहिं नर भूपाला ।
भुवनेश्वर कालहुँ कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता ।
व्यापक अजित अनादि अनन्ता ॥
संस्कृत : तेन वैरं न कर्त्तव्यं शृणु भ्रातरिदं वचः ।
प्रणतार्तिहरं रामं वन्दस्व शिरसाऽधुना ॥
हिन्दी : ताहि बयर तजि नाइप माथा ।
प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥
संस्कृत : यो न विश्वद्रुहमपि जहाति शरणागतम् ।
रामो निर्हेतुकः स्नेहस्तस्मै वितर जानकीम् ॥
हिन्दी : देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही । भजहु राम विनु हेतु सनेही ॥
सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा । विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥
संस्कृत : दैहिकं दैविकं भ्रातस्तापं भौतिकमाशु च ।
विनाशयति यन्नाम स एवाविर्बभूव हि ॥
हिन्दी : जासु नाम त्रय ताप नसावन ।
सोइ प्रभु प्रगट समुझि जिय रावन ॥
संस्कृत : पादौ स्पृष्ट्वा दशग्रीव करोमि विनयं मुहुः ।
मानमोहमदान् हित्वा कोशलाधिपतिं भज ॥
हिन्दी : बार बार पद लागउँ विनय करउँ दससीस ।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥
संस्कृत : शिष्यद्वारा पुलस्त्येन प्रेषितं वाचिकं त्विदम् ।
स्वामिन्नवसरं लब्ध्वा मया तुभ्यं निवेदितम् ॥
हिन्दी : मुनि पुलस्त्य निज शिष्य सन कहि पठई यह बात ।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसर तात ॥
संस्कृत : विभीषणवचः श्रुत्वा सचिवो माल्यवान् मुदा ।
रावणस्य हितं मत्वा प्रोवाच वचनं तदा ॥
विभीषणो हितं वक्ति दशास्य नयभूषणः ।
नयं तथ्यं च पथ्यं च नूनमेव विधीयताम् ॥

हिन्दी : मात्यवन्त अति सचिव सयाना।
तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन।
सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥

संस्कृत : निशम्यैतद्दशग्रीव ऊचे कश्चिदिमौ शठौ।
सद्यो निस्सारयतु तौ स्वामिविश्वासघातिनौ॥

हिन्दी : रिपु उत्कर्ष कहत सठ दोऊ।
दूरि न करहु यहाँ है कोऊ॥

संस्कृत : समाकर्ण्य वचश्चैतन्माल्यवान् स्वगृहे ययौ।
विभीषणः पुनर्बद्धाञ्जलिरुचे दशाननम्॥

हिन्दी : माल्यवन्त गृह गयउ बहोरी।
कहइ बिभीषन पुनि कर जोरी॥

संस्कृत : अन्तर्वसति सर्वेषां सुमतिः कुमतिस्तथा।
सम्पत्तिर्यत्र सुमतिर्विपत्तिः कुमतिर्यतः॥
एवं वदन्ति निखिलाः पुराणनिगमागमाः।

हिन्दी : सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

संस्कृत : दशानन तव स्वान्ते विपरीता मतिः किल।
मित्रं शत्रुं यथा वेत्सि हितं चाहितमेव च॥
रक्षसां कालराव्यां सीतायां प्रीतिरुत्तमा।

हिन्दी : तव उर कुमति बसी बिपरीता।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी।
तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥

संस्कृत : पादौ गृहीत्वा याचेऽहं रक्ष मे लालनं परम्।
जानकीं देहि रामस्य भवेदेवं हितं तव॥

हिन्दी : तात चरन गहि मागेउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥

संस्कृत : श्रुतिस्मृतिपुराणानां विदुषां सम्मतं गिरम् ।
विभीषणेन कथितां नीतिपूर्णां सविस्तराम् ।।
तां निशम्य दशग्रीवः क्रोधेनाह अरे खल ।
विधिना विहितो मृत्युः सविधे ते समागतः ।।

हिन्दी : बुध पुरान श्रुतिसम्मत बानी ।
कही बिभीषन नीति बखानी ।।
सुनत दसानन उठा रिसाई ।
खल तोहिं निकट मृत्यु अब आई ।।

संस्कृत : जीवयामि सदाऽहं त्वां ततः शठ त्वं जीवसि ।
तथापि मम विद्वेष्टुः पक्षपातस्तव प्रियः ।।

हिन्दी : जियसि सदा सठ मोर जियावा ।
रिपुकर पक्ष मूढ़ तोहिं भावा ।।

संस्कृत : ब्रूहि रे खल कश्चास्ति बलवानीदृशो भटः ।
अस्माकं यो भुजबलैरजय्यो जगतीतले ।।

हिन्दी : कहसि न खल अस को जग माहीं ।
भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं ।।

संस्कृत : उषित्वा नगरेऽस्माकं तापसे प्रीतिकृत् शठ ।
तमेव मिल गत्वा त्वं नीतिश्चापि तमादिश ।।

हिन्दी : मम पुर बसि तपसिन पर प्रीती ।
सठ मिलि जाइ तिन्हहिं कहु नीती ।।

संस्कृत : एवमुक्त्वा रावणस्तं प्रजहार पदा क्रुधा ।
विभीषणस्तु पस्पर्श पदं मत्वा मुहुर्मुहुः ।।

हिन्दी : अस कहि किन्हेसि चरन प्रहारा ।
अनुज गहे पद बारहिं बारा ।।

संस्कृत : अपर्णे मह्यतां मह्ये महत्त्वं महतामिदम् ।
अपकारिणमपि सदोपकारेण प्रवर्तनम् ।।

हिन्दी : उमा संत की यही बड़ाई ।
मंद करत जो करइ भलाई ।।

हिन्दी-व्याकरण

(१) **व्याकरण की परिभाषा**—जिसके द्वारा किसी भाषा के शब्दों, वाक्यों तथा वाक्य-समूहों आदि का विधिपूर्वक ज्ञान करके शुद्ध-शुद्ध पढ़ना, बोलना तथा समझना आ जाय, उसे व्याकरण कहते हैं ।

(२) **संज्ञा की परिभाषा**—यदि शब्द किसी पुरुष या स्थान या गुण या वस्तु या और किसी का नाम हो, तो उसे संज्ञा कहते हैं। जैसे—राम, वाराणसी नम्रता इत्यादि ।

संज्ञा के भेद

१. **जातिवाचक संज्ञा**—जिससे जाति का बोध हो, उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं । जैसे—मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि ।

२. **व्यक्तिवाचक संज्ञा**—जिससे एक ही पदार्थ का बोध हो, उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं । जैसे—राम, श्याम, मोहन इत्यादि ।

३. **भाववाचक संज्ञा**—जिससे किसी पदार्थ में पाये जाने वाले गुण, धर्म, दशा, व्यापार तथा भाव आदि का बोध हो, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं । जैसे—मनुष्यत्व, मनुष्यता, बचपन, बुढ़ापा इत्यादि ।

(३) **सर्वनाम की परिभाषा**—संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों को सर्वनाम कहते हैं । जैसे—मैं पुस्तक पढ़ता हूँ । इसमें 'मैं' सर्वनाम है ।

सर्वनाम के भेद

१. **पुरुषवाचक सर्वनाम**—जिस सर्वनाम के द्वारा कहने-सुनने वाले का बोध होता है, उसे पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं । यह तीन प्रकार का होता है । १. उत्तमपुरुष जैसे—मैं । २. मध्यमपुरुष जैसे—तुम । ३. अन्यपुरुष जैसे—वह, वे ।

२. **निश्चयवाचक सर्वनाम**—जिस सर्वनाम के द्वारा निकट या दूर की वस्तुओं का बोध होता है, उसे निश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं । जैसे—यह, ये, वह, वे इत्यादि ।

३. **अनिश्चयवाचक सर्वनाम**—जिस सर्वनाम के द्वारा किसी वस्तु का निश्चित बोध न हो सके, उसे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं । जैसे—कोई, कब, कहाँ, कौन इत्यादि ।

४. सम्बन्धवाचक सर्वनाम—जिस सर्वनाम के द्वारा अन्य संज्ञा या सर्वनाम के सम्बन्ध का बोध होता है, उसे सम्बन्धवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे—जो आया था, वह चला गया। इसमें 'जो' सम्बन्धवाचक सर्वनाम है।

५. प्रश्नवाचक सर्वनाम—जिस सर्वनाम के द्वारा कुछ प्रश्न का बोध होता है, उसे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे—कौन आया था? इसमें 'कौन' प्रश्नवाचक सर्वनाम है।

(४) विशेषण की परिभाषा—जो किसी संज्ञा या सर्वनाम के अर्थ में विशेषता प्रकट कर दे, उसे विशेषण कहते हैं। जैसे—काली गाय, पीला वस्त्र। यहाँ काली तथा पीला विशेषण है।

नोट—जिनकी विशेषता दिखलाई जाती है, वे विशेष्य कहलाते हैं। यहाँ गाय तथा वस्त्र दोनों संज्ञा शब्द विशेष्य हैं।

विशेषण के भेद

१. गुणवाचक विशेषण—जब विशेषण से रंग, आकार, अवस्था, गुण आदि का पता चलता है, तब उसे गुणवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—काला, पीला इत्यादि।

२. संख्यावाचक विशेषण—जब विशेषण से किसी प्रकार की संख्या या गिनती का बोध होता है, तब उसे संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—तीन, चार इत्यादि।

३. परिमाणवाचक विशेषण—जब विशेषण से किसी प्रकार का परिमाण प्रकट होता है, तब उसे परिमाणवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे–कुछ, थोड़ा, बहुत इत्यादि।

४. संकेतवाचक विशेषण—जब विशेषण से किसी प्रकार का संकेत मालूम होता है, तब उसे संकेतवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—यह, वह इत्यादि।

(५) क्रिया की परिभाषा—क्रिया वह शब्द है, जिससे किसी घटना का बोध हो। जैसे—राम पढ़ता है। इस वाक्य में पढ़ना क्रिया है।

क्रिया के भेद

१. अकर्मक क्रिया—अकर्मक वह क्रिया है, जिसमें कर्म न हो, कर्त्ता और क्रिया से ही अर्थ पूरा हो जाता हो, उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे गोपाल जागता है। मोहन सोता है। यहाँ जागना तथा सोना अकर्मक क्रिया है।

२. **सकर्मक क्रिया**—सकर्मक वह क्रिया है, जिसमें कर्म आवश्यक है। क्रिया का फल कर्त्ता पर ही नहीं रहता, बल्कि कर्त्ता से निकल कर कर्म पर होता है। जैसे—गोपाल दूध पीता है। मोहन पुस्तक पढ़ता है। यहाँ पीना तथा पढ़ना सकर्मक क्रिया है।

(६) **क्रिया-विशेषण की परिभाषा**—क्रिया-विशेषण वे शब्द हैं, जिनसे क्रिया की विशेषता प्रकट होती है। जैसे—घोड़ा बहुत तेज दौड़ रहा है। यहाँ बहुत शब्द क्रिया-विशेषण है।

क्रिया-विशेषण के भेद

१. **कालवाचक क्रिया-विशेषण**—जिससे क्रिया के होने के समय का ज्ञान हो, उसे कालवाचक क्रिया-विशेषण कहते हैं। जैसे—आज, कल इत्यादि।

२. **स्थानवाचक क्रिया-विशेषण**—जिससे क्रिया के होने के स्थान का बोध हो, उसे स्थानवाचक क्रिया-विशेषण कहते हैं। जैसे—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इत्यादि।

३. **परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण**—जिससे क्रिया के होने के परिमाण का ज्ञान हो, उसे परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण कहते हैं। जैसे—बहुत, अधिक, इतना, उतना इत्यादि।

४. **निश्चयवाचक क्रिया-विशेषण**—जिससे क्रिया के होने का निश्चित ज्ञान हो, उसे निश्चयवाचक क्रिया-विशेषण कहते हैं। जैसे—अवश्य, निश्चय इत्यादि।

काल, वचन और लिङ्ग

(७) **काल की परिभाषा**—जिससे समय का ज्ञान हो, उसे काल कहते हैं। जैसे—मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। इसमें पुस्तक पढ़ने के समय का ज्ञान होता है।

काल के भेद

१. **भूतकाल**—जिससे बीते हुए समय का बोध हो, उसे भूतकाल कहते हैं। जैसे—मोहन घर गया।

२. **वर्तमानकाल**—जिससे कार्य करते रहने के समय का बोध हो, उसे वर्तमान काल कहते हैं। जैसे—मोहन पुस्तक पढ़ रहा है।

३. **भविष्यत्काल**—जिससे भविष्य में कार्य करने का बोध हो, उसे भविष्यत्काल कहते हैं। जैसे—मोहन वाराणसी जायेगा।

(८) वचन की परिभाषा—जिन शब्दों से एकत्व एवं बहुत्व का बोध होता है, उन्हें वचन कहते हैं।

वचन के भेद

१. एकवचन—जिन शब्दों से केवल एक ही वस्तु का ज्ञान हो, उन्हें एकवचन कहते हैं। जैसे—घोड़ा दौड़ता है।

२. बहुवचन—जिन शब्दों से दो या दो से अधिक वस्तुओं का ज्ञान हो, उन्हें बहुवचन कहते हैं। जैसे—घोड़े दौड़ते हैं।

(९) लिङ्ग की परिभाषा—जिस शब्दरूप अथवा चिह्न से पुरुष एवं स्त्री जाति का बोध हो, उसे लिङ्ग कहते हैं। जैसे—राम, सीता इत्यादि।

लिङ्ग के भेद

१. पुंल्लिङ्ग—जिससे पुरुष जाति के लिङ्ग का बोध हो, उसे पुंल्लिङ्ग कहते हैं। जैसे—राम, कृष्ण, मोहन इत्यादि।

२. स्त्रीलिङ्ग—जिससे स्त्री जाति के लिङ्ग का बोध हो, उसे स्त्रीलिङ्ग कहते हैं। जैसे—सीता, राधिका इत्यादि।

(१०) कारक की परिभाषा—संज्ञा या सर्वनाम का जो रूप अपना सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द से विशेषतः क्रिया से रखता है, उसे कारक कहते है। जैसे—मोहन पढ़ता है। वे जाते हैं इत्यादि।

कारक के भेद

१. कर्त्ता-कारक—वाक्य में क्रिया के करने वाले को कर्त्ता-कारक कहते हैं। जैसे—राम पढ़ता है। यहाँ राम कर्त्ता-कारक है।

२. कर्म-कारक—जिस वस्तु पर क्रिया का फल गिरता है, उसे कर्म-कारक कहते हैं। जैसे—राम फल खाता है। यहाँ फल कर्म-कारक है।

३. करण-कारक—जिस साधन से क्रिया होती है, उसे करण-कारक कहते हैं। जैसे—राम लेखनी से लिखता है। यहाँ लेखनी करण-कारक है।

४. सम्प्रदान-कारक—जिसके लिए कोई क्रिया की जाती है, उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं। जैसे—राम को मिठाई दो। ब्राह्मणों के लिए वस्त्र दो। यहाँ राम तथा ब्राह्मण सम्प्रदान-कारक हैं।

५. अपादान-कारक—जिस वस्तु से जुदाई प्रकट होती है, उसे अपादान कारक कहते हैं। जैसे—पेड़ से पत्ते गिरते हैं। यहाँ पेड़ अपादान-कारक है।

६. सम्बन्ध-कारक—जिस वस्तु का सम्बन्ध किसी दूसरी वस्तु से प्रकट होता है, उसे सम्बन्ध-कारक कहते हैं। जैसे—राम का भाई पढ़ता है। यहाँ राम सम्बन्ध-कारक है।

७. अधिकरण-कारक—जिस वस्तु से क्रिया का आधार प्रकट होता है, उसे अधिकरण-कारक कहते हैं। जैसे—वह कुर्सी पर बैठा है। यहाँ कुर्सी अधिकरण-कारक है।

८. सम्बोधन-कारक—जिस किसी को पुकारा, बुलाया या सम्बोधित किया जाता है, उसे सम्बोधन-कारक कहते हैं। जैसे—हे राम ! यहाँ आओ। यहाँ हे राम सम्बोधन-कारक है।

(११) अव्यय की परिभाषा—यदि शब्द का रूप सदा एक ही समान रहता हो, अर्थात् लिङ्ग, वचन, कारक में बदलता न हो तो उसे अव्यय कहते हैं। जैसे—यथाशक्ति, प्रतिदिन। यहाँ यथा एवं प्रति शब्द अव्यय हैं।

अव्यय के भेद

१. क्रिया-विशेषण अव्यय—जो शब्द क्रिया के अर्थ को बढ़ाकर उसमें कोई विशेषता प्रकट करते हैं, वे क्रिया-विशेषण अव्यय कहलाते हैं। जैसे—मूसलाधार वर्षा हो रही है। रमेश तेज दौड़ता है। यहाँ मूसलाधार तथा तेज क्रिया-विशेषण अव्यय हैं।

२. सम्बन्धवाचक अव्यय—जो शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम् का सम्बन्ध किसी दूसरे शब्द के साथ जोड़ते हैं, वे सम्बन्धवाचक अव्यय कहलाते हैं। जैसे—छत के ऊपर कबूतर बैठा है। यहाँ ऊपर शब्द सम्बन्धवाचक अव्यय है।

३. समुच्चयबोधक अव्यय—जो अव्यय शब्दों, शब्दसमूहों और वाक्यों को एक-दूसरे से मिलाते हैं, वे समुच्चयबोधक अव्यय कहलाते हैं। जैसे—राजा और रानी लखनऊ गये। यहाँ और शब्द समुच्चयबोधक अव्यय है।

४. विस्मयादिबोधक अव्यय—जो अव्यय मन के भाव अर्थात् विस्मय, हर्ष, शोक, पीड़ा आदि प्रकट करते हैं और जिनका सम्बन्ध वाक्य से नहीं होता, वे विस्मयादिबोधक अव्यय कहलाते हैं। जैसे—अरे ! यह तुमने क्या किया ? अहाहा ! यह तुमने अच्छा किया। यहाँ अरे ! तथा अहाहा ! विस्मयादिबोधक अव्यय हैं।

(१२) सन्धि की परिभाषा—सन्धि शब्द का अर्थ है मिलना। जब दो अक्षर मिलते हैं, तब उनमें से एक में या दोनों में कुछ परिवर्तन हो जाता है

और एक नया रूप पैदा हो जाता है, उसी को सन्धि कहते हैं। जैसे—राम+ईश्वर=रामेश्वर।

सन्धि के भेद

१. **स्वरसन्धि**—जब एक स्वर दूसरे स्वर से मिलता है, तब स्वरसन्धि होती है। जैसे—विद्या+आलय=विद्यालय।

नोट—स्वरसन्धि के मुख्यत: ४ प्रकार हैं—

दीर्घसन्धि—विद्या+अर्थी=विद्यार्थी। कवि+ईश्वर=कवीश्वर।

गुणसन्धि—राम+ईश्वर=रामेश्वर। पर+उपकार=परोपकार।

वृद्धिसन्धि—स्वर्ग+ऐश्वर्य=स्वर्गैश्वर्य। काष्ठ+औषधि=काष्ठौषधि।

यण्सन्धि—यदि+अपि=यद्यपि। प्रति+एक=प्रत्येक।

अयादि सन्धि—ने+अन=नयन। नै+अक=नायक।

२. **व्यञ्जनसन्धि**—जब व्यञ्जन दूसरे व्यञ्जन या स्वर से मिलता है, तब व्यञ्जनसन्धि होती है। जैसे—जगत्+नाथ=जगन्नाथ। जगत्+ईश=जगदीश।

३. **विसर्गसन्धि**—जब विसर्ग किसी व्यञ्जन या स्वर से मिलता है, तब विसर्गसन्धि होती है। जैसे—मन:+रथ=मनोरथ। मन:+अनुकूल=मनोऽनुकूल।

(१३) **समास की परिभाषा**—दो या अधिक शब्दों के मेल को समास कहते हैं। जैसे—राम और कृष्ण=रामकृष्ण।

समास के भेद

१. **अव्ययीभाव समास**—इस समास में पहला शब्द अव्यय होता है और उसका अर्थ मुख्य होता है। जैसे—यथाशक्ति, अनुरूप, प्रतिदिन, अतिकाल।

२. **तत्पुरुष समास**—इस समास में दूसरे शब्द का अर्थ मुख्य होता है और पहले शब्द में कर्त्ता-कारक को छोड़कर सभी कारक आते हैं। जैसे—राजपुरुष (राजा का पुरुष), दु:खरहित (दु:ख से रहित), कार्यनिपुण (कार्य में निपुण)।

३. **द्विगु समास**—इस समास में दूसरा शब्द मुख्य होता है और पहला शब्द संख्यावाचक किसी गिनती का नाम होता है। जैसे—नवरत्न, चतुर्वर्ण। यहाँ नव तथा चतु: संख्यावाचक हैं।

४. द्वन्द्व समास—इस समास में दोनों या जितने शब्द हों, सभी प्रधान होते हैं और उनके बीच में और शब्द छिपा रहता है। जैसे—राम-कृष्ण (राम और कृष्ण), हाथ-पैर (हाथ और पैर)।

५. कर्मधारय समास—इस समास में दोनों शब्द प्रधान होते हैं। इसमें पहला पद विशेषण होता है या विशेषण का काम करता है और दूसरा शब्द भी या तो पहले का विशेषण होता है या विशेष्य का काम करता है। जैसे—लालवस्त्र, पीताम्बर (पीत+अम्बर)।

६. बहुव्रीहि समास—इस समास में कोई शब्द प्रधान नहीं होता, बल्कि दोनों शब्दों के जोड़ने से एक नया अर्थ पैदा होता है, वही प्रधान होता है। जैसे—चन्द्रशेखर=चन्द्र है शेखर पर जिसके अर्थात् महादेव। त्रिनेत्र=तीन हैं नेत्र जिसके अर्थात् शिव।

मुहावरा

(अर्थ तथा वाक्य मे प्रयोग)

१. अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना (जान-बूझ कर कार्य बिगाड़ना)—चोर अपनी दुष्टता के कारण अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं।

२. अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना (अपनी प्रशंसा स्वयं करना)—दुष्ट स्वयं अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते हैं।

३. अन्धे की लकड़ी (एकमात्र सहारा)—एक पुत्र अन्धे की लकड़ी के समान है।

४. अगर-मगर करना—(इधर-उधर करना)—दुष्ट सदैव अगर-मगर करता है।

५. आँखों का तारा –(अत्यन्त प्यारा)—राम महाराजा दशरथ की आँखों के तारे थे।

६. आँखों में धूल झोंकना (धोखा देना)—चोर आँखों में धूल झोंक कर चोरी करते हैं।

७. आँखों से उतरना (बुरा लगना)—अपने दुर्व्यवहार के कारण कोई भी मनुष्य आँखों से उतर जाता है।

८. आना-कानी करना (बहाना बनाना)—आलसी मनुष्य कार्य के समय आना-कानी करते हैं।

९. आँखें चार होना (परस्पर देखना)—प्रेममार्ग में दोनों प्रेमियों की आँखें चार होती हैं।

१०. आग-बबूला होना –(क्रोधित होना)—दुष्टजन भगवद्भक्तों पर आग-बबूला होते हैं।

११. आँख पर परदा पड़ना (कुछ न समझना)—जब किसी के दुर्दिन आता है, तब उसकी आँखों पर परदा पड़ जाता है।

१२. आँख खोलना (ज्ञान होना)—जब मनुष्य धोखा खाता है, तब उसकी आँख खुलती है।

१३. आस्तीन का साँप होना (विश्वासघात करना)—मोहन मित्र नहीं बल्कि अपने कार्यों से आस्तीन का साँप हो गया है।

१४. आँखों में समाना (सदैव ध्यान में रहना)—भगवान् सदैव भक्त-जनों की आँखों में समाये रहते हैं।

१५. ईद का चाँद होना (दुर्लभ होना)—रमेश भाई, तुम तो ईद के चाँद हो गये हो।

१६. उँगली उठाना (दोष निकालना)—विद्वान् मूर्खों पर उँगली उठाते हैं।

१७. उँगली पर नाचना (वश में होना)—प्रेमी प्रेमिकाओं की उँगली पर नाचते हैं।

१८. उलटी गंगा बहाना (असम्भव को सम्भव करना)—उद्योगी मनुष्य उलटी गंगा बहाते हैं।

१९. ऊँट के मुँह में जीरा देना (कम देना)—अधिक भूख लगने पर थोड़ा देना ऊँट के मुँह में जीरा देना है।

२०. एड़ी-चोटी का पसीना एक करना (अथक परिश्रम करना)—अच्छे विद्यार्थी परीक्षा के समय एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देते हैं।

२१. एक पंथ दो काज (एक उद्योग से दो कार्य सिद्ध करना)—तीर्थों में जाकर स्नान तथा देवदर्शन एक पंथ दो काज के समान है।

२२. एक आँख से देखना (एक समान मानना)—सज्जन लोग समस्त जगत् को एक आँख से देखते हैं।

२३. कच्चा चिट्ठा खोलना (रहस्य प्रकट करना)—चोर पुलिस के समक्ष कच्चा चिट्ठा खोल देते हैं।

२४. कदम बढ़ाना (आगे बढ़ना)—शूरवीर देशसेवा के लिए सदैव कदम बढ़ाते हैं।

२५. कलेजा थामना (जी कड़ा करना)—वीर पुरुष विपत्ति के समय कलेजा थाम लेते हैं।

२६. कान खड़ा करना (सतर्क होना)—अध्यापक को देखकर छात्रों के कान खड़े हो जाते हैं।

२७. कान का कच्चा होना (शिकायत पर तुरन्त विश्वास करना)—कमजोर हृदय वाले कान के कच्चे होते हैं।

२८. काम आना (सार्थक होना)—सैनिक देश की रक्षा में काम आते हैं।

२९. कान भरना (शिकायत करना)—दुष्टों का काम ही है दूसरों का कान भरना।

३०. काया पलट होना (परिवर्तन होना)—योग्य प्राचार्य अपने विद्यालय की काया पलट देते हैं ।

३१. कुत्ते की मौत मरना (बुरी दशा में पड़ना)—दुष्टजन अपने कर्त्तव्यवश कुत्ते की मौत मरते हैं ।

३२. कलम तोड़ना (अच्छा कार्य करना)—अच्छे कवि तथा लेखक अपनी रचनाओं में कलम तोड़कर लिखते हैं ।

३३. खटाई में पड़ना (काम रुक जाना)—दुष्टों की बाधा से काम खटाई में पड़ जाता है ।

३४. खाक छानना (व्यर्थ घूमना)—अनध्ययनशील छात्र खाक छानते रहते हैं ।

३५. खाक में मिलना (काम बिगड़ना)—कामी की तपस्या खाक में मिल जाती है ।

३६. खिल्ली उड़ाना (मजाक करना)—दुष्टजन सज्जनों की खिल्ली उड़ाते हैं ।

३७. खून सूखना (भयभीत होना)—पुलिस को देखकर चोरों का खून सूख जाता है ।

३८. खून चूसना (परेशान करना)—दुष्ट अपने कर्त्तव्य से सज्जनों का खून चूसतें हैं ।

३९. खून का प्यासा (मारने की इच्छा करना)—युद्धभूमि में वीर शत्रु के खून के प्यासे होते हैं ।

४०. गड़े मुर्दे उखाड़ना (बीती बात उभाड़ना)—बात करते समय दुष्टजन गड़े मुर्दे उखाड़ा करते हैं ।

४१. गुदड़ी का लाल होना (मूल्यवान् होना)—अच्छे देशभक्त गुदड़ी के लाल होते हैं ।

४२. गले का हार होना (अतिप्रिय होना)—आज तुलसी का रामचरितमानस भारतीय जनता के गले का हार बना हुआ है ।

४३. गाँठ बाँधना (स्मरण करना)—महापुरुषों की बातें गाँठ बाँध कर रखनी चाहिए ।

४४. गागर में सागर भरना (थोड़े में बहुत कहना)—कवि बिहारी लाल ने अपने दोहों में गागर में सागर भर दिया है ।

४५. घड़ों पानी पड़ना (लज्जित होना)—फटकार से मूर्खों पर घड़ों पानी पड़ता है ।

४६. घाव पर नमक छिड़कना (दु:खी करना)—दुष्टजन सदैव सज्जनों के लिए घाव पर नमक छिड़कने का काम करते हैं ।

४७. चकमा देना (बहकाना)—पकड़े जाने पर चोर सदैव सज्जनों को चकमा देकर भागने की कोशिश करता है ।

४८. चल बसना (मर जाना)—आज मोहन के पिता चल बसे ।

४९. चिराग तले अँधेरा (अपना दोष न देखना)—दूसरों का दोष देखने वाले स्वयं चिराग तले अँधेरे का काम करते हैं ।

५०. चार चाँद लगाना (सुसज्जित करना)—दीपावली के अवसर पर घरों में चार चाँद लग जाते हैं ।

५१. चुल्लू भर पानी में डूब मरना (लज्जित होना)—गुरुजनों का का अपमान करने वालों को चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए ।

५२. चैन की बंशी बजाना (प्रसन्न होना)—आजकल रमेश स्वतन्त्र है, अत: चैन की बंशी बजा रहा है ।

५३. छप्पर फाड़ कर देना (बिना परिश्रम के कार्य सिद्ध होना)—जब ईश्वर देता है, तब छप्पर फाड़ कर देता है ।

५४. छाती पर मूंग दलना (परेशान करना)—दुष्ट सदैव छाती पर मूंग दलता रहता है ।

५५. छोटे मुँह बड़ी बात (अत्यधिक बढ़-बढ़ कर बातें करना)—बड़ों के समक्ष कुछ कहना छोटे मुँह बड़ी बात है ।

५६. जमीन पर पाँव न रखना (फूले न समाना)—सम्पत्ति पाकर क्षुद्र व्यक्ति जमीन पर पैर नहीं रखते ।

५७. जान पर खेलना (प्राण की परवाह न करना)—सज्जन उचित कार्य हेतु जान पर खेल जाते हैं ।

५८. जी छोटा करना (धैर्य खोना)—विपत्ति पड़ने पर क्षुद्र पुरुष जी छोटा करते हैं ।

५९. झख मारना (पश्चात्ताप करना)—उद्योगी पुरुषों के समक्ष आलसी सदैव झख मारते हैं ।

६०. टाल-मटोल करना (बहकाना)—आलसी मनुष्य कार्य हेतु टाल-मटोल करते रहते हैं ।

६१. टेढ़ी खीर होना (कठिनाई होना)—समुद्र पार करना टेढ़ी खीर है ।

६२. ठोकर खाना (नुकसान होना)—दुष्ट सदैव अपने कामों से ठोकर खाते रहते हैं ।

६३. डंके की चोट (दृढ़तापूर्वक) मैं डंके की चोट से कह सकता हूँ कि तुलसीदास भगवान् राम के परम भक्त थे ।

६४. डूबते को तिनके का सहारा (आधार होना)—सज्जन डूबते को तिनके का सहारा होते हैं ।

६५. नमक-मिर्च लगाना (इधर-उधर करके बातें करना)— दुष्टजन बात करते समय खूब नमक-मिर्च लगाते हैं ।

६६. नाक रखना (इज्जत बचाना)—वीर पुरुष देश की नाक रखते हैं ।

६७. नाकों चने चबाना (कठिनाई में पड़ना) वीरों के समक्ष शत्रुओं को नाकों चने चबाना पड़ता है ।

६८. नाक कटाना (अपमानित होना)—रमेश, तुम इतने प्रतिष्ठित कुल के होकर क्यों नाक कटा रहे हो ?

६९. हरिश्चन्द्र बनना (सत्यवादी बनना)—धोखेबाज प्रायः हरिश्चन्द्र बनने की कोशिश करते हैं ।

७०. हवाई महल बनाना (व्यर्थ मनोरथ करना) कायर मनुष्य व्यर्थ ही हवाई महल बनाते रहते हैं ।

७१. होश उड़ना (मर जाना)—सिंह की दहाड़ सुनते ही शशक का होश उड़ जाता है ।

हिन्दी-निबन्ध

(१) हमारे प्रियकवि गोस्वामी तुलसीदास

शायद ही कोई ऐसा भारतीय होगा, जो प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास के पुनीत नाम से परिचित न हो। इनका जन्म बाँदा मण्डलान्तर्गत राजापुर नामक ग्राम में संवत् १५८९ वि० में हुआ था। कुछ विद्वानों ने इनका जन्म संवत् १५५४ वि० माना है, परन्तु उपर्युक्त जन्म-संवत् ही अधिक प्रामाणिक है। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा इनकी माता का नाम हुलसी था। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण इनके माता-पिता ने अनिष्ट की आशंका से इनका परित्याग कर दिया। मुनिया नामक दासी ने इनका लालन-पालन किया, परन्तु वह स्वल्प काल में ही काल-कवलित हो गई, जिससे यह बालक अनाथ हो गया। यदि इस बालक को कहीं से चार चना मिल जाता था, तो वह समझता था कि मुझे अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष—चार फल मिल गया। अपनी इस दयनीय स्थिति का वर्णन इन्होंने निम्नांकित पंक्तियों में किया है—

मातु पिता जग जाइ तज्यो,
विधिहु न लिख्यो कछु भाल भलाई।

× ×

जानत हौं चारि फल चारिहू चनक को।

संयोगवश वाराह-क्षेत्र में इनका गुरु नरहर्यानन्द से परिचय हुआ और इन्होंने उन्हीं के मुखारविन्द से भगवान् राम की कथा सुनी, जिसे संवत् १६३१ वि० में 'रामचरितमानस' के रूप में हिन्दी भाषा-बद्ध किया। इनकी पत्नी का नाम रत्नावली था, जिसे ये बहुत प्रेम करते थे। कहा जाता है कि इसी पत्नी की फटकार से इनका मन विरक्त होकर रामभक्ति में अनुरक्त हुआ। इनका देहावसान काशी में गंगा के अस्सी घाट पर संवत् १६८० वि० में हुआ। इस सम्बन्ध में दो प्रकार के दोहे प्रसिद्ध हैं—

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

× × ×

सम्बत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर ।।

इन दोहों में अन्तिम दोहा ही अधिक प्रामाणिक माना जाता है। भक्तिकाल की सगुण धारा के रामभक्ति शाखा के कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का प्रमुख स्थान है। जिस समय इन्होंने काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया, उस समय इनके पूर्ववर्ती कवियों द्वारा पाँच प्रकार की शैलियाँ तथा दो प्रकार की भाषाएँ मान्य हो चुकी थीं। गोस्वामीजी ने उन सभी शैलियों तथा भाषाओं पर पूर्ण अधिकार रखते हुए अपने विभिन्न काव्यों का निर्माण किया। यथा— विद्यापति की पदावली शैली के आधार पर गीतावली तथा विनयपत्रिका, सन्तों के दोहे की शैली पर दोहावली, सूफी कवियों की शैली पर रामचरितमानस, भाटों की शैली पर कवितावली तथा बरवै शैली पर बरवै रामायण। इन काव्यों के अतिरिक्त इनकी और भी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—जानकीमंगल, पार्वतीमंगल तथा रामलला नहछू इत्यादि। इनके प्रबन्ध काव्य की भाषा अवधी तथा पदों, कवित्त एवं सवैया की भाषा ब्रज है।

गोस्वामी तुलसीदासजी की इतनी बड़ी ख्याति का एकमात्र कारण है— उनका प्रबन्ध काव्य रामचरितमानस, जिसमें इन्होंने मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम तथा जगत्-जननी भगवती सीता के पावन चरित्र का चित्रण किया है। वास्तव में ऐसे पुनीत चरित्र का प्रकाश ऐसे ही कवि की लेखनी से सम्भव था। राम के आदर्श चरित्र की एक झाँकी देखिए—

प्रात:काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिताहिं गुरु नावहिं माथा ।।

सीता का चरित्र आदर्श पतिव्रता का चरित्र है। यह अपने पति की अनुगामिनी है। वनपथ पर अपने स्वामी राम के पीछे गमन करती हुई इतनी सभीत हैं कि पति के चरणचिह्न से उनके चरण का स्पर्श न हो जाय—

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता ।।

वास्तव में गोस्वामीजी का यह प्रबन्ध काव्य मर्यादित काव्य है। यही कारण है कि इसके भीतर सर्वत्र मर्यादा निहित है। इनका श्रृंगार-वर्णन सुन्दर होते हुए भी इतना सौम्य है कि हम उसे माँ-बहिनों के समक्ष स्वेच्छापूर्वक पढ़ सकते हैं। इन्होंने जनकपुर में फुलवारी का वर्णन पूर्वानुराग के रूप में चित्रित किया है। इधर राम-लक्ष्मण गुरु विश्वामित्र की आज्ञा से पुष्पचयन निमित्त पुष्पवाटिका में जाते हैं और सीता अपनी सुभग

सहेलियों के साथ माता की आज्ञा से गिरिजा-पूजन के लिए आती हैं। दोनों एक-दूसरे के रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं और अपने हृदय-मन्दिर में रूपचित्र अंकित कर लेते हैं—

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्हीं। चारु चित्त भीतीं लिख लीन्हीं॥

यह है गोस्वामीजी का संयोगश्रृंगार-वर्णन। वियोग-वर्णन में भी उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। वे सीता के वियोग में साधारण पुरुषों की भाँति विलाप करते हैं। वे वनजीवों तथा लताओं से पूछते हैं—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी॥

इतना होने पर भी गोस्वामीजी का यह रामविरह-वर्णन उन नायकों का विरह-वर्णन नहीं है, जो विलासिता का स्वप्न देखते हैं, चारपाई पर करवटें बदलते हैं तथा हाय-हाय करते हैं; प्रत्युत ऐसी अवस्था में भी वे सजग हैं। वे जटायु, शबरी, सुग्रीव एवं विभीषण को दर्शन एवं शरण देकर उनका उद्धार करते हैं तथा साधु-सन्तों को दुःख देने वाले राक्षसों का संहार करते हैं।

श्रृंगार के समान ही गोस्वामीजी करुण तथा रौद्र आदि रसों के वर्णन में भी सिद्धहस्त हैं। इस प्रकार इन्हें भावपक्ष में तो आशातीत सफलता मिली ही है, इनका कलापक्ष भी बहुत ही मनोहर है। इन्होंने अलंकारों का वर्णन चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं किया है, बल्कि वे विषयानुसार स्वभावतः आ गये हैं। अनुप्रास इनका प्रिय अलंकार है, सर्वत्र व्याप्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें अनुप्रास का राजा कहा है—

वंदउँ गुरुपद पदम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥

× × ×

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

इन्होंने रूपक अलंकार का सर्वाधिक वर्णन किया है। धनुभंग के समय रूपक का एक चित्र देखिए—

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥

इसी प्रकार इन्होंने उपमा, श्लेष तथा अतिशयोक्ति आदि प्रसिद्ध अलंकारों का यथेष्ट वर्णन किया है।

तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस आज समस्त भारतीय जनता के गले का हार बना हुआ है। केवल भारत ही नहीं, विदेशों में भी जितना

मानस का प्रचार-प्रसार है, उतना हिन्दी साहित्य के किसी भी काव्य का नहीं। इसी मानस के कारण गोस्वामीजी आज भी अमर हैं। यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सर्वाधिक अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है? तो इसका एकमात्र यही उत्तर हो सकता है कि भारत-हृदय, भारतीय कुलभूषण, भक्तकविचूड़ामणि मर्यादावादी कवि गोस्वामी तुलसीदास।

(२) हमारे प्रिय लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म रायबरेली मण्डलान्तर्गत दौलतपुर नामक ग्राम में सन् १८६४ ई० में हुआ था। विद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर ये कुछ समय तक रेलवे-विभाग में नौकरी करते रहे, परन्तु भगवान् ने इन्हें एक साहित्यिक विभूति बनने के लिए जन्म दिया था, रेलवे की नौकरी के लिए नहीं। इन्होंने घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बँगला तथा मराठी का अध्ययन करके अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। हिन्दी भाषा तथा साहित्य की ओर इनकी विशेष रुचि थी। इन्होंने इसे सुधारने तथा सँवारने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया। इसकी चिन्ता में ये चौबीसों घण्टे व्यस्त रहा करते थे। इन्होंने हिन्दी की अस्थिर लेखन शैली को स्थिरता प्रदान की। इनके पूर्व जितने भी गद्य-लेखक हुए थे, उनकी रचनाओं में अशुद्धता तथा उच्छृंखलता की प्रधानता थी। द्विवेदीजी ने भाषा को व्याकरण सम्बन्धी नियमों से बाँध कर उसके रूप को सुसंस्कृत तथा परिष्कृत बना दिया। सर्वप्रथम इन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करना प्रारम्भ करके एक नवीन एवं प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत किया। द्विवेदीजी ने अपने समकालीन लेखकों का एक मण्डल बनाया, जो 'द्विवेदी-मण्डल' के नाम से विख्यात था। इनका देहावसान सन् १९३८ ई० में हो गया।

हिन्दी गद्य-साहित्य के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी का प्रमुख स्थान है। ये अपने समय के गद्य-लेखकों के शिरमौर्य थे। इनकी निम्नांकित कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, सम्पत्तिशास्त्र, रसज्ञरञ्जन तथा विचार-विमर्श। इनकी भाषा खड़ी बोली परिष्कृत हिन्दी है। इनकी शैली के तीन रूप हैं—परिचयात्मक शैली, आलोचनात्मक शैली तथा अन्वेषणात्मक शैली।

इनकी शैलियों में एक मधुर आकर्षण है, जिसमें सरसता विद्यमान है। इनकी कृतियों को देखने से यह ज्ञात होता है कि ये भावों को सुन्दरतापूर्वक व्यक्त करने में तथा व्यंग्योक्ति के निरूपण में अद्वितीय हैं। भाषा के क्षेत्र में ये अन्यतम लेखक हैं। इनकी भाषा सरल तथा सुबोध है। इनके सिद्धान्तानुसार प्रचलित शब्दों को अपना लेना ही हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए उपयुक्त है, चाहे वे शब्द संस्कृत के हों, चाहे अरबी के हो या चाहे फारसी के। यही कारण है कि द्विवेदीजी की भाषा में सर्वत्र सजीवता तथा स्वाभाविकता विद्यमान है, जिसे पढ़कर पाठक मुदित हो जाते हैं। यहाँ द्विवेदीजी द्वारा लिखित 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' नामक निबन्ध की कुछ पंक्तियाँ अवतरित की जा रही हैं, जिससे इनकी भाषा-शैली पर प्रकाश पड़ता है—

'जब कमल शोभित होते हैं तब कुमुद नहीं और जब कुमुद शोभित होते हैं तब कमल नहीं। दोनों की दशा एक-सी नहीं रहती, परन्तु इस समय प्रातःकाल दोनों में तुल्यता देखी जाती है। कुमुद बन्द होने को हैं, पर अभी पूरे बन्द नहीं हुए। उधर कमल खिलने को हैं, पर अभी पूरे खिले नहीं। रहे भ्रमर, सो अभी दोनों पर मँडरा रहे हैं और गुंजा-रव के बहाने दोनों ही के प्रशंसा के गीत गा रहे हैं'।

इसी प्रकार 'साहित्य की महत्ता' नामक निबन्ध की भी कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'ज्ञान-राशि के सञ्चित कोष का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती, तो वह रूपवती भिखारिन की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसकी श्रीसम्पन्नता, उसकी मान-मर्यादा उसके साहित्य पर ही अवलम्बित है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती। जिस साहित्य में इतनी शक्ति है, जो साहित्य मुर्दों को भी जिन्दा करने वाली सञ्जीवनी औषधि का आकार है, जो साहित्य पतितों को उठाने वाला और उत्थितों के मस्तक को ऊँचा करने वाला है, उसके उत्पादन और संवर्द्धन की चेष्टा जो जाति नहीं करती, वह अज्ञानान्धकार के गर्त में पड़ी रह कर किसी दिन अपना अस्तित्व खो बैठती है। अतएव समर्थ होकर भी जो मनुष्य इतने महत्त्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नहीं करता

अथवा उससे अनुराग नहीं रखता वह देशद्रोही है, वह जातिद्रोही है; किं बहुना, वह आत्मद्रोही और आत्महन्ता भी है।

इस प्रकार द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य की जो सेवा की है, उसके लिए हिन्दी साहित्य सदैव उनका ऋणी रहेगा। इन्होंने अंग्रेजी की ओर झुके हुए हिन्दी भाषा-भाषियों को हिन्दी की ओर खींचा, अन्य भाषाओं से रत्न निकाले और उससे हिन्दी भाषा को सुसज्जित किया। इन्होंने हिन्दी को उस समय चमकाया, जब उसमें कोई चमक नहीं थी।

द्विवेदीजी की हिन्दी-सेवा से प्रभावित होकर एक आलोचक ने इनकी तुलना डाक्टर जानसन से करते हुए लिखा है कि 'द्विवेदीजी ने हिन्दी के लिए वही कार्य किया, जो अंग्रेजी के लिए डाक्टर जानसन ने किया था। जिस प्रकार डाक्टर जानसन अपने युग के आचार्य थे, हिन्दी संसार भी द्विवेदी जी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करके उन पर गर्व करता है'।

(३) हमारे प्रिय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त
अथवा
हमारे प्रिय प्रतिनिधि-कवि मैथिलीशरण गुप्त

श्रीमैथिलीशरण गुप्त का जन्म झाँसी मण्डलान्तर्गत चिरगाँव नामक ग्राम में सन् १८८६ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम रामचरण गुप्त था, जो बड़े ही कविताप्रेमी एवं धार्मिक व्यक्ति थे। इनके ऊपर पिता के व्यक्तित्व की पूर्ण छाप पड़ी थी। कहा जाता है कि एक दिन इनकी एक कविता पर प्रसन्न होकर इनके पिता ने इन्हें महाकवि होने का आशीर्वाद दिया था, जो सत्य हुआ। सन् १९६४ ई० में इनका देहावसान हो गया।

आधुनिक युग के यशस्वी कवियों में इनका नाम बड़े ही आदर के साथ स्मरण किया जाता है। वे हमारे समक्ष राष्ट्रप्रेम सम्बन्धी कविताओं के कारण राष्ट्रकवि एवं आधुनिक हिन्दी काव्यधारा को नवीन रूप देकर विकसित करने के कारण प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनकी निम्नांकित कृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं—भारतभारती, पञ्चवटी, रंग में भंग, जयद्रथ-वध, द्वापर, साकेत तथा यशोधरा। इनमें अन्तिम दो बड़े काव्य हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार साकेत महाकाव्य की संज्ञा से अलंकृत है। इसकी रचना का मुख्य ध्येय यह है कि 'उर्मिला काव्य की उपेक्षिता न रह जाय।'

इस काव्य में उर्मिला का चरित्र महनीय है। कवि ने उसे 'स्वर्ग का सुमन' कहा है—

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला।
नाम उसका उचित ही है उर्मिला॥

साकेत में कवि ने शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग तथा वियोग का वर्णन किया है, परन्तु वियोग की प्रधानता है। जब लक्ष्मण अपने ज्येष्ठ भ्राता राम के साथ वन चले जाते हैं, उस समय वियोगिनी उर्मिला विरह से संतप्त होकर अपनी प्रिय सखि सुलक्षणा से कहती है—

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग तो जलता ही है, दीपक भी जलता है॥

विरहावस्था में एक दिन उर्मिला के निकट कामदेव उपस्थित होता है, जिससे उनके हृदय में क्षोभ होने लगता है। सर्वप्रथम तो वह उससे अनुनय-विनय करती है, परन्तु अन्त में उसके न मानने पर उसे फटकारते हुए कहती है—

मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो॥
होकर मधु के मीत मदन, पटु तुम कटु गरल न गारो।
मुझे विकलता तुम्हें विफलता, ठहरो श्रम परिहारो॥
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो।
बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह, यह हर नेत्र निहारो॥
रूप दर्प कन्दर्प तुम्हें तो, मेरे पति पर वारो।
लो यह मेरी चरणधूलि, उस रति के सिर पर डारो॥

इस काव्य के अन्तर्गत अनेक स्थानों पर स्वाभाविक चित्रण भी हुआ है, जिससे काव्य की कमनीयता बढ़ गई है। यथा कैकेयी के प्रति मन्थरा का कथन—

भरत से सुत पर भी सन्देह।
बुलाया तक न जिसे था गेह॥

एक आलोचक ने साकेत की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'उर्मिला की तपस्या तपस्विनी उमा की तपस्या की याद दिला देती है। चौदह वर्ष की कठिन तपस्या के बाद जब उसने अपने देवता को पुनः पाया, तब उसके

ऐहिक जीवन में रह ही क्या गया था ? प्रियतम से मिलन का समय उपस्थित होने पर वह अपनी प्रिय सखि सुलक्षणा से कहती है—

पर यौवन उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं।
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मैं।।

गुप्तजी ने यशोधरा नामक काव्य की रचना नाटकीय ढंग पर की है। जिस समय भगवान् बुद्ध मोक्षप्राप्ति हेतु अपनी प्रिय पत्नी यशोधरा और प्रिय पुत्र राहुल को सोते हुए छोड़कर चले जाते हैं, उस समय वह घबड़ाती नहीं, बल्कि अपनी प्रिय सखि से अपने पति की सफलता हेतु शुभकामना करती है—

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की वात।
पर चोरी चोरी गये, यही वड़ा व्याघात।।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथवाधा ही पाते।।

इस काव्य का अन्तिम लक्ष्य अवला जीवन की महत्ता है—

अवला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।

गुप्तजी ने भारतभारती में देशप्रेम की अच्छी झलक दिखाई है। यह राष्ट्र-प्रेम का परिचारक है—

जिसको न निज गौरव तथा निज जाति का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।।

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्तजी ने अपने काव्यों, विशेष रूप से भारत-भारती के माध्यम से जनमानस को प्रेरित करते हुए राष्ट्रीयता को जागृत किया है तथा इसी प्रकार साकेत तथा यशोधरा के माध्यम से नारी-उत्थान के विविध रूपों का चित्रण करके समाज को नवीन दिशा दिखला कर प्रतिनिधित्व किया है।

अतः मैथिलीशरण गुप्त को आधुनिक युग का राष्ट्रकवि तथा प्रतिनिधि कवि से अलंकृत किया जाय तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

(४) हमारा प्रिय काव्य सूरसागर

हिन्दी साहित्य के कृष्णभक्ति काव्यों में सूरदास कृत सूरसागर का विशेष महत्त्व है। यह केवल कृष्ण-साहित्य ही नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य की अमर निधि है। यह सर्वप्रिय काव्य है। भक्तकवि सूरदास ने भागवत के दशम

स्कन्ध के आधार पर पदावली शैली तथा व्रज भाषा में इस काव्य की रचना की है, जिसमें भगवान् कृष्ण की बाल-लीला तथा यौवन-लीला के अनेक मधुर चित्र चित्रित हैं। ऐसा वर्णन गोस्वामी तुलसीदास से भी सम्भव न हो सका, परन्तु उन्हें हिन्दी साहित्य में जो सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, उसका एकमात्र कारण है—भगवान् राम का सर्वांगपूर्ण वर्णन।

वास्तव में सूरदासजी ने भगवान् कृष्ण की स्वाभाविक प्रक्रियाओं का जो चित्रण किया है वह केवल हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व-साहित्य के लिए भी आदर्श है। सूरसागर का बाल्य-वर्णन पढ़कर आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी दंग रह जाते हैं। बालक कृष्ण के घुटने चलने का एक मनोहर चित्र देखिए—

किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन, मुख प्रतिविम्ब पकरिबे धावत॥

× × ×

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए॥

कृष्ण के अंगुली पकड़ कर चलने का भी दृश्य देखिए—

सिखवत चलन जसोदा मैया।
थरथराय करि पानि गहावत डगमगाय धरनी धरे पैया॥

बालकों में ईर्ष्या की मात्रा कितनी अधिक होती है, इसकी एक झलक देखिए। बालक कृष्ण धीरे-धीरे बड़े होते हैं। वे दिन-रात इसी चिन्ता में मग्न हैं कि मेरी चोटी बड़े भाई बलराम की चोटी की भाँति लम्बी क्यों नहीं हो जाती? वे दूध पीने में आनाकानी भी करते हैं, तब माता यशोदा कहती हैं—

कजरी को पय पिवहु लाल तब बढ़ेगी चोटी

तत्पश्चात् वे दो-चार दिनों तक दूध पीते हैं और पुनः माता यशोदा से पूछते हैं—

मातु मम कबहुँ बढ़ेगी चोटी?
कितक बार मोंहि दूध पियत भइ, यह अजहूँ है छोटी॥

इसी प्रकार जब कृष्ण खेलने जाते हैं, उस समय ग्वाल-बाल तथा बलराम उन्हें चिढ़ाते हैं, तब ये माता यशोदा के निकट आकर कहते हैं—

मातु मोंहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीन्हों, तोंहि जसुमति कब जायो।

इसी प्रकार गायों के चराने तथा बालकों के दैनिक चर्या के वर्णन भी बड़े ही मनोहर हैं—

खेलत में को काको गुसैंया।
अति अधिकार जनावत याते, अधिक तुम्हारी है कछु गैया।

यह तो हुआ सूरदास के सूरसागर का वात्सल्य-वर्णन, अब शृंगार-वर्णन भी देखिए। शृंगार के उभय पक्ष संयोग और वियोग वर्णन में सर्वप्रथम संयोग वर्णन उपस्थित किया जा रहा है। राधा-कृष्ण में प्रेम की उत्पत्ति बाल्यावस्था में ही हो जाती है और वह भी रूप आकर्षण के द्वारा—

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये स्याम रबि तनया के तट अंग लसत चंदन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि पर्‌यो ठगोरी॥

× × ×

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तुम बेटी? देखी नाँहि कहूँ ब्रज खोरी॥

इस खेल ही खेल में इतनी बड़ी बात पैदा हो जाती है, जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम नाम की मनोवृत्ति का जैसा विस्तृत और पूर्ण ज्ञान सूरदास को था, वैसा और किसी कवि को नहीं। संयोग-शृंगार की एक और झाँकी देखिए; कृष्ण गाय दूह रहे हैं, वहीं उनके निकट राधिका भी खड़ी हैं—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी॥

अब सूरदास के सूरसागर का वियोग-वर्णन देखिए। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर नन्द, यशोदा, गो-गोपी, ग्वाल-बाल सभी की अवस्था विषम है। राधिका तथा गोपियों के विरह की क्या चर्चा की जाय, जिनके साथ उन्होंने इतनी क्रीडाएँ कीं, रास-लीला रचाई। उनकी दशा का चित्र देखिए। वे परस्पर कहती हैं—

सखी, इन नैनन ते घन हारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै, जब ते स्याम सिधारे॥

उद्धवजी गोपियों से कृष्ण के ज्ञान, योग और निर्गुण का सन्देश सुनाते हैं, जिसे सुनकर वे कहती हैं—

लरिकाई को प्रेम कहौ अलि, कैसे छूटे ?

इसके अतिरिक्त प्रेमी कृष्ण हमारे सरल हृदय में तिरछे अड़े हुए हैं, उन्हें बाहर निकालना टेढ़ी खीर है—

उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसेहु निकसत नहिं उधो ! ह्वै तिरछे जू अड़े ॥

गोपियाँ उद्धव के ज्ञान-योग तथा निर्गुण को दुर्लभ बतलाती हुई कहती हैं कि आप जिस निर्गुण का उपदेश दे रहे हैं, उसके माता-पिता तथा रूप-रंग का पता भी है ?

निर्गुन कौन देस को बासी।
को है जनक जननि को कहियत, कौन नारि को दासी ?

अन्त में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धवजी, आपका निर्गुण हमारे किसी काम का नहीं, हमारी आँखें केवल कृष्ण के दर्शन के लिए लालायित हैं। अतः आप कृपा करके एक बार उनके मुख का दर्शन करा दें—

अँखिया हरि दरसन की भूखी।
बारक वह मुख फेरि दिखावहु, दुहि पय पियत पतूखी ॥

यद्यपि भक्तकवि सूरदास द्वारा रचित सूरसागर गोस्वामी तुलसीदास द्वारा निर्मित रामचरित के समान इतना व्यापक नहीं है, जिसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का समावेश हो, पर जिस परिमित क्षेत्र में वात्सल्य एवं श्रृंगार का निरूपण हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

(५) साहित्य और समाज
अथवा
साहित्य समाज का दर्पण है

साहित्य और समाज दोनों सापेक्ष हैं, दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि साहित्य ज्ञानराशि का सञ्चित कोष है, तो समाज व्यक्ति का सम्मिलित रूप है। किसी भी देश के साहित्य में हम उस देश का, उस देश की जाति का एवं उनकी सभ्यता का प्रतिबिम्ब देखते हैं। यही कारण है कि साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब या समाज का दर्पण कहा जाता है। मानव-जीवन में

साहित्य की बहुत बड़ी महत्ता है। इस सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय, वह स्वल्प है, क्योंकि साहित्य में जो शक्ति निहित है, वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं है। साहित्य से व्यक्ति एवं समाज दोनों का संवर्धन होता है। यह दोनों के लिए सञ्जीवनी है। यह पतितों को ऊपर उठाने वाला तथा उत्पीड़ितों के मस्तक को ऊँचा करने वाला है। जब हम अपने आदि काल के साहित्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह काल लड़ाई-झगड़ों का पूर्ण काल रहा है। उस समय जितने भी कवि हुए, प्रायः सभी राजाश्रित थे। वे कविता भी करते थे और आवश्यकता पड़ने पर तलवार भी चलाते थे। वह ऐसा युग था कि उस समय की स्त्रियाँ भी वीरांगनाएँ होती थीं। वे युद्ध के लिए अपने पतियों को उत्साहित करती थीं। यदि किसी वीर रमणी का पति युद्धभूमि से पीठ दिखाकर घर आता था, तब वह नारी अपने कायर एवं भयभीत पति को कोसती तथा व्यंग्यात्मक वचनों के मधुर प्रहार से उसका स्वागत-सत्कार करती थी—

'आइए, पतिदेव, भले आए। मेरी चूड़ियाँ एवं मेरे वस्त्र पहन कर घर के कोने में घूंघट काढ़ कर बैठिए। आपका स्वागत है। अब आपके स्थान पर लड़ने के लिए मैं जा रही हूँ। दीजिए मुझे तलवार।' जिस स्त्री का पति युद्ध करते हुए रणभूमि में मृत्यु को वरण करता था, वह वीरांगना बहुत ही प्रसन्न होती थी और अपनी सखी से कहती थी कि 'सखी, बहुत अच्छा हुआ, जो मेरा पति युद्धभूमि में मारा गया, अन्यथा वह रण से विमुख होकर घर आता तो मुझे सहेलियों के बीच में लज्जित होना पड़ता—

भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि म्हारा कंत।
लज्जेयं जु वियंसियहुँ जो भग्गा घर अंत॥

आदिकाल के अवसान के पश्चात् भक्तिकाल के साहित्य का निर्माण हुआ। प्रायः यह देखा जाता है कि जब मनुष्य विपत्तियों से आवृत होता है तब ईश्वर का स्मरण करता है। ठीक यही परिस्थिति आदिकाल के अवसान और भक्तिकाल के प्रारम्भ की हुई। आदि युग में लड़ाई के होने से देश में धन-जन दोनों की क्षति हुई। फलतः जनता कल्याण का दूसरा मार्ग न देखकर ईश्वर के शरणापन्न हुई। इसी समय तुलसी तथा सूर जैसे भक्तकवियों ने समाज का रुख देखकर राम और कृष्ण साहित्य का निर्माण करके जनता को सुखी बना दिया। अब सारा युग राम-कृष्णमय हो गया—

चरन कमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई ॥

भक्तिकाल के पश्चात् ऐसा युग आया, जिसमें प्रायः सभी राजा-प्रजा विलासिता में मग्न थे। इस समय के कवि भी राजाश्रित थे। अतः इस समय के कवियों का वर्णनीय विषय वही हुआ, जो राजाओं को प्रिय था। इस काल के प्रसिद्ध कवि बिहारीलाल जिस समय राजा जयसिंह के दरबार में पहुँचे, उस समय राजा अपनी मुग्धा रानी के प्रेम में इतने विभोर थे कि राज-काज देखने के लिए बाहर निकलते ही न थे। दरबारियों की राय से बिहारी ने राजा के पास एक व्यंग्यपूर्ण दोहा भेजा—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल।
अली कली में ही बन्ध्यों आगे कवन हवाल ॥

कहा जाता है कि राजा जयसिंह इस दोहे से बहुत ही प्रभावित हुए और तुरन्त रनिवास से दरबार में आकर कवि बिहारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और बहुत-सा पारितोषिक देकर अपना दरबारी कवि बना लिया। तदनन्तर इसी प्रकार के शृंगाररसपरिपूर्ण दोहे बनाने के लिए कहकर प्रति दोहे एक-एक अशर्फी पारितोषिक देने का वचन दिया—

हुकुम पाइ जयसाहि के, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि साहित्य ने ही राजा जयसिंह को रनिवास से दरबार में बुलाया, साहित्य ने ही नादिरशाह के कत्लेआम को बन्द कराया। अतः साहित्य एक ओर व्यक्ति-समाज का उत्थान करता है और दूसरी ओर जीवन को सरस बनाता है। अतः जो व्यक्ति, जाति या समाज ऐसे महत्त्वपूर्ण साहित्य से अनुराग नहीं करता, वह देशद्रोही, जातिद्रोही तथा आत्मद्रोही है, क्योंकि साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब या दर्पण है।

(६) भारतीय संस्कृति

किसी भी देश की संस्कृति उस देश में निवास करने वाले मनुष्यों की प्रगति तथा विकास की परिचायिका होती है। यहाँ भारतीय संस्कृति से तात्पर्य है—भारत वर्ष में निवासी मनुष्यों की संस्कृति। संस्कृति शब्द संस्कृत

के 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—सुन्दर या उज्ज्वल स्थिति। यह इसका सीमित अर्थ है। इसके अतिरिक्त इसका एक व्यापक अर्थ भी है, जिससे वहाँ के स्थित मनुष्यों के उन्नत आचार-विचार का परिज्ञान होता है। वास्तव में भारत देश धर्म-प्रधान देश है। यहाँ के निवासी भारतीय कहलाते हैं, जिनमें धर्म की विशेषता है। यही धर्म संस्कृति का परिचायक है। जिस प्रकार धर्म अनादि है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति भी अनादि है। यह भारत देश इतना बड़ा देश है कि इसमें अनेक जातियाँ, अनेक सम्प्रदाय, अनेक धर्म तथा अनेक भाषा-भाषी निवास करते हैं। यहाँ तो यह स्थिति है कि—

'कोस-कोस पर बदले पानी,
चार कोस पर बानी'॥

यहाँ की विभिन्नताओं को देखकर विदेशी चकित हो जाते हैं और सोचने लगते हैं कि यह एक देश है अथवा अनेक देशों का सम्मिलित रूप है, परन्तु जब वह विदेशी यहाँ की संस्कृति से परिचित होता है तब उसकी शंका दूर हो जाती है। भारत वर्ष की संस्कृति की विशेषता है—अनेकता में एकता लाना। ऐसी विशेषता अन्य देशों में नहीं है। यह इस देश के संस्कृति की निजी विशेषता है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रंग वाले पुष्प माला में ग्रथित होकर माला के रूप में एक हो जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ की संस्कृति सभी को समेट कर एक बन जाती है।

भारतीय संस्कृति में नदियाँ, पर्वत, समुद्र, वृक्ष तथा नाग सभी देवी-देवताओं के समान पूज्य हैं। भारतवासी इन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते, पूजते तथा नमन करते हैं। यहाँ की गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, गोदावरी तथा सरयू आदि पूज्य नदियों में; हिमालय, सुमेरु, कैलाश तथा विन्ध्याचल आदि पूज्य पर्वतों में; गंगासागर आदि समुद्रों में; वट, पीपल, श्रीफल तथा आमलक आदि वृक्षों एवं तुलसी आदि पौधों में तथा सस्यश्यामला पृथ्वी में भारतीय संस्कृति सुरक्षित है। इनके अतिरिक्त वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा स्मृति आदि धर्मग्रन्थों में; भगवान् के राम-कृष्ण अवतारों में; विष्णु, शिव एवं दुर्गा आदि देवमन्दिरों में; गर्भाधान, पुंसवन आदि षोडश संस्कारों में; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि वर्णव्यवस्था में एवं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में यह भारतीय संस्कृति सुरक्षित है।

यह भारत भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण की अवतार भूमि है, जिनके चरित पर महर्षि वाल्मीकि ने अपने रामायण तथा महर्षि व्यास ने अपने भागवत में सर्वप्रथम प्रकाश डाला है और अब तक कितने महान् कवियों द्वारा प्रकाश पड़ते आ रहे हैं। ये दोनों भगवान् राम तथा कृष्ण के रूप में धर्म की रक्षा तथा अधर्म के नाश के लिए एवं साधु-सन्तों के कल्याण के लिए अवतरित होते रहते हैं—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'॥

इसी तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है—

जब जब होइ धरम की हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं सदा सज्जन मन पीरा॥

इसी भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर शाहंशाह शाहजहाँ ने कहा था कि यदि पृथ्वी पर स्वर्ग कहीं है तो यहाँ ही है, यहाँ ही है, यहाँ ही है—

'गर फिरदौस बर रुए जमीनस्त।
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त'॥

इस प्रकार भारतीय संस्कृति अनादि है, अमर है और भविष्य में भी अमर रहेगी।

(७) विद्यार्थी जीवन में अनुशासन का महत्त्व

मानव-जीवन का समय शत वर्ष माना गया है—

'जीवेम शरदः शतम्'।

मैं सौ वर्षों तक जीवन धारण करूँ। महर्षियों ने इस सौ वर्ष की आयु को चार भागों में विभक्त किया है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। इनमें प्रथम अवस्था विद्योपार्जन, द्वितीय अवस्था धनोपार्जन तथा तृतीय अवस्था

पुण्योपार्जन की कही गई है। चतुर्थ अवस्था में तो कुछ भी सम्भव नहीं है। कहा भी गया है—

'प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति ?॥

अतः विद्याध्ययन का उपयुक्त समय ब्रह्मचर्यावस्था ही है। प्राचीन काल में विद्यार्थी गुरुकुल में निवास कर गुरुजनों की सेवा करते हुए विद्योपार्जन करते रहे। भगवान् राम भी अपने भ्राताओं के साथ गुरु वशिष्ठ के आश्रम पर और भगवान् कृष्ण भी गुरु सन्दीपन के आश्रम पर निवास कर शास्त्र-विद्याओं का अध्ययन किये—

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई।

यदि महाराजा दशरथ तथा श्री वसुदेवजी चाहते तो गुरुवरों को अपने स्थान पर बुलवा कर अपने पुत्रों को विद्याध्ययन करा सकते थे, परन्तु प्राचीन काल की गुरु-परम्परा की मर्यादा का ध्यान रखते हुए उनके आश्रम पर ही शास्त्राध्ययन उचित समझे, क्योंकि वहाँ गुरुसेवा का भी अवसर प्राप्त होता था, जो विद्या की वृद्धि में सहायक था—

'गुरुशुश्रूषया विद्या।'

विद्यार्थी जीवन मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इसी नींव पर समस्त जीवन आधारित है, क्योंकि इसका श्रीगणेश बाल्यावस्था में होता है। इस समय मस्तिष्क बड़ा कोमल रहता है। इस काल में जैसा संस्कार पड़ जाता है, वही जीवन पर्यन्त रहता है। वृक्ष-पौधों को अंकुरित होने के कुछ समय बाद जिधर झुका दिया जाता है, वे जीवन भर वैसे ही बने रहते हैं। इसी प्रकार विद्यार्थी जीवन में जिधर झुकाव हो जाता है, वैसे ही सदैव बना रहता है। अतः विद्यार्थी जीवन विकास का प्रथम सोपान है। यह एक तपस्या है, जिससे शारीरिक, बौद्धिक तथा मानसिक विकास के साथ विनम्रता, सत्यता तथा अनुशासनप्रियता आदि अनेक सद्गुणों की भी वृद्धि होती है। कहा भी गया है—

'छात्राणां पठनं तपः'।

× ×

'विद्या ददाति विनयम्'।

सुख की कामना करने वाले को विद्या नहीं आती। अतः विद्यार्थी

सुख का त्याग करना पड़ता है। सुखार्थी को विद्या कहाँ और विद्यार्थी को सुख कहाँ ?

'सुखार्थी वा त्यजेत् विद्या, विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनः सुखम्'॥

विद्यार्थी को विद्या प्राप्त करने के लिए काक के समान चेष्टा, बक के समान ध्यान, श्वान के समान निद्रा के साथ अल्पाहार एवं गृहत्याग—इन पाँच लक्षणों (गुणों) को अपनाना अनिवार्य है, तभी विद्या आ सकती है—

'काकचेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थीपञ्चलक्षणम्॥

विद्या के द्वारा विद्यार्थी विद्वान् होकर सर्वत्र पूजित होता है। विद्या प्रच्छन्न गुप्त धन है, न इसे कोई विभाजित कर सकता है और न कोई चुरा सकता है। विद्या के द्वारा समाज में तो पूजा होती ही है, राजदरबार में भी सम्मान होता है। विद्या की तुलना में कोई भी धन नहीं है। अतः विद्या-विहीन मनुष्य पशुतुल्य है—

'विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः'।

आज विद्यार्थियों के विद्योपार्जन के लिए अनेक विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय निर्मित हैं, जहाँ विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् शिक्षक नियुक्त हैं, पर विद्यार्थी शिक्षा से लाभान्वित होना नहीं चाहता। न तो उसकी गुरुजनों में श्रद्धा-भक्ति है, न अध्ययन में अभिरुचि। उसकी एकमात्र यही कामना रहती है कि किसी भी प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण होकर परीक्षोपाधि-पत्र प्राप्त कर लें, चाहे एतदर्थ अनुचित साधन ही क्यों न अपनाना पड़े। आज के विद्यार्थी विनम्रता, सत्यता तथा अनुशासनप्रियता आदि सद्गुणों से बहुत दूर हो गये हैं। वे इतने उच्छृंखल हो गये हैं कि गुरुजनों का अपमान करते हैं, उन पर प्रहार करते हैं और कभी उनकी हत्या भी कर देते हैं। आधुनिक वातावरण ही इसका एकमात्र कारण है। शिक्षा का उद्देश्य है छात्रों का चरित्र-निर्माण। जब तक इस ध्येय की पूर्ति नहीं होगी तब तक विद्यार्थियों में विनम्रता आदि गुणों का विकास नहीं होगा। एतदर्थ आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में भी सुधार की आवश्यकता है, जिससे विद्यार्थियों में अनुशासन-प्रियता का भाव जाग्रत हो सके।

(८) हमारा प्रिय नगर : वाराणसी

भगवान् विश्वनाथ की प्रिय नगरी वाराणसी तीनों लोकों से न्यारी है। कहा जाता है कि यह भगवान् शिव के त्रिशूल पर बसी है और इसका प्रलय में भी नाश नहीं होता। वरुणा तथा अस्सी दो नदियों के बीच में बसी होने के कारण इसका नाम वाराणसी है। यहाँ भगवती भागीरथी गंगा उत्तर-वाहिनी हैं, जो धनुषाकार बहती हैं। गंगाजी को यह नगरी इतनी प्रिय है कि वे इसे स्वप्न में छोड़ना नहीं चाहतीं, बल्कि सदैव अंक में ही लिपटी रहना चाहती हैं, क्योंकि इनके प्रिय भगवान् शंकर यहाँ सदैव निवास करते हैं। भला प्रिय वियोग कोई सहन कर सकता है ? अतः—

सपनेहू नहिं तजी रही अंकम लपटाई।

वाराणसी की शोभा गंगा तथा गंगा-घाटों से है। इसके घाटों में अस्सी घाट, हरिश्चन्द्र घाट, केदार घाट, शीतला घाट, प्रयाग घाट, दशाश्वमेघ घाट, राजेन्द्रप्रसाद घाट, मणिकर्णिका घाट, संकटा घाट, पंचगंगा घाट तथा राज-घाट इत्यादि प्रसिद्ध घाट हैं। यह नगरी काशी के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहाँ अनेक विद्यालय, महाविद्यालय तथा तीन विश्वविद्यालय हैं। विश्वविद्यालयों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व-विद्यालय अपने विशिष्ट गुरुवरों तथा अपनी शिक्षा के लिए प्रसिद्ध हैं, जहाँ देश-विदेश से शिक्षार्थी आकर अपने विषयों का अध्ययन करते तथा विश्व-विद्यालयों की कीर्ति बढ़ाते हैं। यह नगरी प्रारम्भ से ही संस्कृत विद्या तथा भारतीय संस्कृति का केन्द्र रही है और आज भी है तथा भविष्य में भी रहेगी। यह वाराणसी बड़े-बड़े महर्षियों, ऋषियों, तपस्वियों, महात्माओं, साधु-सन्तों, महापुरुषों एवं विद्वानों की तपस्या, साधना तथा अध्ययन का केन्द्रबिन्दु रही है, जहाँ से ज्ञान का प्रकाश सर्वत्र प्रसरित हुआ है। यह पुरी मोक्षदायिनी, ज्ञानवर्द्धिनी, पापनाशिनी तथा भगवान् विश्वनाथ एवं भगवती पार्वती (अन्न-पूर्णा) की निवासभूमि है। अतः ऐसा कौन पुरुष होगा, जो इसका सेवन न करें ?

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि सो काशी सेइय कस न॥

यह काशी केवल एक-दो दिन नहीं, एक मास या एक वर्ष नहीं, बल्कि

श्रद्धापूर्वक जीवन पर्यन्त सेवन करने की पुरी है, क्योंकि यह कामधेनु के समान इच्छित फलदात्री है—

सेइय सहित सनेह देह धरि कामधेनु कलि कासी।
समन शोक सन्ताप पाप रुज सकल सुमंगल रासी॥
तुलसी बस हर पुरी राम भजु जो भयो चहहु सुपासी॥

वास्तव में इस असार संसार में केवल चार ही सार (तत्त्व) है। काशी में निवास, सज्जनों का साथ, गंगाजल का सेवन तथा शिव-पूजन—

'असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां सङ्गः गङ्गाम्भः शिवपूजनम्'॥

मोक्षदायिनी सप्त पुरियों में वाराणसी का विशेष महत्त्व है। कहा जाता है कि यहाँ मृत्यु हो जाने पर जीव की सद्गति हो जाती है। माता अन्नपूर्णा उस जीव को अपनी गोद में लेकर बैठती हैं और भगवान् विश्वनाथ उसके कान में मंत्र का उपदेश करते हैं, जिससे वह पाप-ताप से निर्मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

ऐसे पुनीत एवं धार्मिक वाराणसी नगरी का दर्शन करने के लिए देश-विदेश से असंख्य जन प्रतिदिन आते रहते हैं। पर्वों एवं त्योहारों के अवसर पर तो उनकी संख्या विशेष बढ़ जाती है। यहाँ गंगास्नान तथा विश्वनाथ-अन्नपूर्णाजी का दर्शन करके तीर्थयात्री अपने को कृतकृत्य मानते हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों में कालभैरव, संकटा, केदारेश्वर, दुर्गा, संकटमोचन तथा गणेशजी के मन्दिर भी दर्शनीय हैं। यहाँ का मानस-मन्दिर अपने ढंग का निराला है, जिसकी संगमरमर की दीवालों पर मानस की चौपाइयाँ तथा दोहे आदि उट्टंकित हैं तथा बीच में भगवान् राम, भगवती सीता तथा शेषावतार लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं। यहाँ के मन्दिरों में भगवान् शिव-मन्दिर की ही प्रधानता है, जिनमें अनेक नामों से विश्वनाथजी प्रतिष्ठित हैं। ऐसे मन्दिरों की संख्या अनन्त हैं। यहाँ प्रत्येक राजमार्ग के किनारे, गलियों के भीतर तथा घरों में शिव विद्यमान हैं। काशी की शिवमूर्तियों के लिए यह कथन प्रसिद्ध है कि—

काशी के कंकर शिवशंकर के समान हैं।

इस प्रकार वाराणसी या काशी की महिमा इतनी अधिक है कि वेद-

पुराण भी 'नेति नेति' कहकर गुणगान करते हैं। अतः साधारण मनुष्य अमित महिमा का क्या वर्णन कर सकता है ?

(९) गंगा का महत्त्व एवं गंगाप्रदूषण

भगवती गंगा पर्वतराज हिमालय की ज्येष्ठ कन्या हैं, जिन्हें पितामह की आज्ञा से देवगण हिमगिरि से याचना करके लोककल्याण हेतु स्वर्ग ले आये थे। एक दिन ब्रह्माजी ने कुपित होकर उन्हें मृत्युलोक में जाने का शाप दे दिया। कल्पभेद की कथा के अनुसार गंगा भगवान् विष्णु के पद-नख से प्रकट हैं। भगवान् विष्णु ने वामन रूप से राजा बलि के यज्ञ में तीन पग भूमि की याचना की थी, जिसे उन्होंने स्वीकार किया था, परन्तु भगवान् ने पृथ्वी नापते समय अपना विराट् रूप बना लिया। जब वे स्वर्गलोक नापने लगे, तब पितामह ब्रह्मा ने भगवान् के चरण को धोकर उस पुनीत जल को अपने कमण्डल में रख लिया। वही ब्रह्मद्रव गंगा के रूप में तीन लोक में पूजित है—

नख निर्गता सुर वंदिता त्रयलोकपावन सुरसरी।

राजा भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके पितरों के उद्धार के लिए ब्रह्माजी ने उसी ब्रह्मद्रव गंगा के बूंद को पृथ्वी पर छोड़ा, जिसे सर्वप्रथम भगवान् शंकर ने अपने जटाजूट में धारण किया। तत्पश्चात् वह गंगाजी राजा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे धारा के रूप में कल-कल निनाद करती हुई चलीं। उस दिन ज्येष्ठ शुक्ल दशमी की तिथि थी, जो गंगा-अवतरण या गंगा दशहरा के नाम से प्रसिद्ध हुआ—

'दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासे कुजेऽहनि।
अवतीर्णा यतः स्वर्गात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता'॥

जिस समय देवनदी गंगा महाराजा भगीरथ के पथ का अनुगमन कर रही थी, उस समय देव, ऋषि, गन्धर्व तथा मनुष्य आदि सभी उनकी रमणीय शोभा देखकर प्रसन्न हो रहे थे। इसी बीच गंगा ने अपने तीव्र जलप्रवाह से तपस्वी जह्नु मुनि की पूजा-सामग्री पत्र-पुष्पादि को बहा दिया, जिससे वे क्रोधित होकर उनके समस्त जल को पी गये, उनकी धारा लुप्त हो गई। राजा भगीरथ ने पीछे घूम कर देखा—गंगाजी का कहीं पता नहीं है। उन्होंने ऋषि की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया, जिससे पुत्री की कामना से मुनि ने

कान के मार्ग से गंगा को प्रकट कर दिया। इसी से देवनदी गंगा जह्नु-बालिका या जाह्नवी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। तदनन्तर गंगा मृत्युलोक को पवित्र करती हुई पाताललोक में गईं, जहाँ अपने जल-स्पर्श से राजा भगीरथ के पितरों का उद्धार किया। इस प्रकार त्रिपथगामिनी होकर देवनदी गंगा ने अपने पावन जल से स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल तीनों लोकों का कल्याण किया है। राजा भगीरथ की तपस्या से पृथ्वी पर अवतरण होने के कारण हैमवती गंगा भागीरथी के नाम से विख्यात हैं। यह देवनदी अपने प्रवाह से अपने तटवर्ती हरिद्वार, प्रयाग तथा वाराणसी आदि तीर्थों को तो पवित्र करती ही हैं, उस देश को भी पावन बनाती हैं, जहाँ प्रवाहित होती हैं—

धन्य देस सो जहँ सुरसरी।

देवनदी गंगा का ऐसा माहात्म्य है कि यदि कोई सौ योजन दूर से ही 'गंगा-गंगा' उच्चारण करता है, तो उसके समस्त पाप दूर हो जाते हैं और वह विष्णुलोक का अधिकारी बन जाता है—

'गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति' ॥

इतना ही नहीं, यदि किसी के मन में गंगा-स्नान हेतु संकल्प आ गया तो उस मनुष्य के करोड़ों कुलों का उद्धार हो जाता है—

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा कुलकोटि उधारे।

वेदों तथा पुराणों में गंगाजी के दर्शन, स्पर्श, स्नान तथा जलपान की महिमा प्रचुर मात्रा में वर्णित है—

दरस परस मज्जन अरु पाना। हरे पाप कह वेद पुराना।

परन्तु आज कलकारखानों तथा गन्दे नालों आदि विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से गंगाजी का पुनीत जल दूषित होता जा रहा है। यद्यपि सरकार इसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील है, फिर भी इसमें जनता का भी सहयोग अपेक्षित है। गंगा-तटों की पवित्रता बनाये रखना—इनका परम कर्त्तव्य है।

एतदर्थ अपने कल्याण हेतु समस्त मानवों का यह परम धर्म है कि वे भक्ति तथा श्रद्धा के साथ देवनदी भगवती भागीरथी गंगा का सेवन करें, क्योंकि इस मृत्युलोक में गंगा कलिकाल के कुटिल जीवों के निस्तार के लिए ही आई हैं। अतः गंगा में अपनी दृढ़मति हेतु उनसे प्रार्थना करें—

'देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारणतरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले, मम मतिरास्तां तव पदकमले' ॥

(१०) पुस्तकालय की उपयोगिता

पुस्तकालय शब्द दो शब्दों से बना है—पुस्तक + आलय। इसका अर्थ है—पुस्तक का घर, जहाँ पुस्तकें रखी जाती हैं। यद्यपि दुकानों पर भी पुस्तकें रखी जाती हैं, परन्तु उनका लक्ष्य विक्रय करना है। अतः यहाँ पुस्तकालय से तात्पर्य उस स्थान की पुस्तकों से हैं जो क्रय हेतु न हों, बल्कि पठन हेतु हों।

पुस्तकालयों के दो प्रकार हैं—(१) सार्वजनिक पुस्तकालय, (२) व्यक्तिगत पुस्तकालय। सार्वजनिक पुस्तकालय से सभी लाभान्वित हो सकते हैं, परन्तु व्यक्तिगत पुस्तकालय से केवल वही लाभ उठा सकता है, जिसका वह पुस्तकालय हो। व्यक्तिगत पुस्तकालय की अपेक्षा सार्वजनिक पुस्तकालय श्रेष्ठ है, क्योंकि व्यक्तिगत पुस्तकालय का सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष से है, जो अपनी रुचि के अनुसार पुस्तकों का चयन करता है, परन्तु सार्वजनिक पुस्तकालय एक व्यक्ति की रुचि को नहीं बल्कि सभी की रुचि की पूर्ति करता है। व्यक्तिगत पुस्तकालय की सीमा सीमित रहती है, परन्तु सार्वजनिक पुस्तकालय की सीमा बृहद् होती है। इसमें विभिन्न विषयों की पुस्तकें पाठकों को उपलब्ध होती रहती हैं।

वास्तव में पुस्तकालय ज्ञानवर्द्धन का एक बहुत बड़ा साधन है। व्यक्तिगत पुस्तकालयों के समान ही विद्यालयों के पुस्तकालय होते हैं। उनमें प्रायः पाठ्य-पुस्तकों एवं उससे सम्बन्धित सीमित पुस्तकें रहती हैं, जिनसे अध्यापक एवं छात्र लाभान्वित होते हैं। उनसे सीमित ज्ञान बढ़ता है, परन्तु सार्वजनिक पुस्तकालयों में भिन्न-भिन्न विषयों की अनेक पुस्तकें रहती हैं, जिन्हें निर्धारित समय के भीतर वहाँ के वाचनालयों में बैठकर पढ़ा जा सकता है। सार्वजनिक पुस्तकालयों से पुस्तकों को घर ले जा करके भी अध्ययन कर सकते हैं, परन्तु एतदर्थ उनके नियम के अनुसार कुछ शुल्क देकर सदस्य बनना पड़ता है। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने से पूर्ण ज्ञान नहीं होता, उसकी पूर्ति तो पुस्तकालयों से ही होती है, क्योंकि वहाँ अनेक विषयों से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें होती हैं। अनेक लेखकों की विचारधाराओं से विशेष ज्ञानार्जन होता है। यदि कोई चाहे कि अपने पुस्तकालय में अनेक

पुस्तकें क्रय करके उनकी संख्या बढ़ा दें, तो यह कार्य कठिन है। यह तो सार्वजनिक पुस्तकालयों से ही सम्भव है। ऐसे पुस्तकालयों से धनी तथा निर्धन सभी लाभान्वित हो सकते हैं। पुस्तकालयों के वाचनालय में प्रतिदिन अनेक प्रकार के समाचारपत्र तथा मासिक पत्रिकाएँ आती रहती हैं। पाठक उन्हें पढ़कर देश-विदेश के समाचारों से परिचित होते हैं तथा पत्रिकाओं में विभिन्न प्रकार की कहानियों एवं मनोरञ्जन के साधनों से आनन्दित होते हैं। पुस्तकालयों के नियमों पर ध्यान देना तथा उसके अनुसार चलना परमावश्यक है। यथा—

१. पुस्तकों को गंदा न करें। २. पुस्तकों के पृष्ठों को न मोड़ें। ३. पुस्तकों में किसी प्रकार का चिह्न न लगावें। ४. पुस्तकों के पृष्ठों को न फाड़ें इत्यादि।

पुस्तकालय हमारा परम मित्र है। महर्षि वाल्मीकि का रामायण, महर्षि व्यास के भागवत इत्यादि पुराण, गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन से हम अपने जीवन को सुधार सकते हैं। इसी प्रकार राजनैतिक पुस्तकों से हमें राजनीति का ज्ञान होता है, सामाजिक पुस्तकों से समाज की स्थिति ज्ञात होती है, ऐतिहासिक पुस्तकों से अतीत के महापुरुषों का पता चलता है, भौगोलिक पुस्तकों से देश-विदेश की जलवायु का परिज्ञान होता है तथा वैज्ञानिक पुस्तकों से विज्ञान में प्रवेश होता है।

आजकल चल पुस्तकालयों की भी व्यवस्था है, जो चलते-फिरते पुस्तकालय हैं। एक सीमित अवधि के लिए ऐसे पुस्तकालय एक गाँव से दूसरे गाँव में स्थित रहते हैं, जिनसे ग्रामीण जनता लाभान्वित होती है, परन्तु ऐसे चल पुस्तकालयों में पुस्तकों की संख्या कम होती है।

सुना जाता है कि विदेशों के पुस्तकालयों में पुस्तकों की संख्या अत्यधिक है। उनकी तुलना में हमारा भारत देश बहुत पीछे है। अतः सरकार से यह आशा की जाती है कि वह पुस्तकालय की दिशा में ध्यान दें और इसे समृद्धशाली बनायें। इसके साथ ही जनता का सहयोग भी अपेक्षित है कि वह तन, मन, धन से पुस्तकालयों को विकसित करने में अपना योगदान करें।

(११) देशप्रेम

अथवा

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

कौन ऐसा हतभाग्य मनुष्य होगा जो अपनी जननी, जन्मभूमि एवं देश

से प्रेम न करता हो, क्योंकि ये स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। इस सम्बन्ध में यह ठीक ही कहा गया है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

× ×

'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रस धार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥'

जिस मनुष्य को अपना गौरव नहीं, अपने देश का अभिमान नहीं, वह मनुष्य नहीं बल्कि पशु है और मृतक-सदृश है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है॥

अपने देश की रक्षा और उसके विकास के लिए सतत प्रयत्न करना देश-प्रेम कहलाता है। विषुवत् रेखा का निवासी भी, जहाँ बहुत गर्मी पड़ती है, हाँफ-हाँफ कर जीता है; वह भी अपने देश पर अलौकिक अनुराग रखता है। ध्रुव देश का निवासी भी, जहाँ हिम और तम की अधिकता है, काँप-काँप कर जीता है और अपने देश की रक्षा के लिए प्राणों को भी न्योछावर कर देता है—

विषुवत् रेखा का वासी जो, जीता है नित हाँफ-हाँफ कर।
रखता है अनुराग अलौकिक, वह भी अपनी मातृभूमि पर॥
ध्रुववासी जो हिम में तम में, जी लेता है काँप-काँप कर।
वह भी अपनी मातृभूमि पर, कर देता है प्राण निछावर॥

हमारा भारतवर्ष स्वर्ग के समान सुख देने वाला तथा समस्त ऐश्वर्य एवं सुखों की भूमि है, जो इस पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ है, जहाँ जीवन धारण कर, जिसका अन्न-जल ग्रहण कर जिसकी धूल तथा मिट्टी में खेल-खेल कर हम इतने बड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, बल्कि हम वीरों के वंशज हैं। अतः उस प्यारे देश से प्रेम करना, उसकी रक्षा करना हमारा परम धर्म है। जब तक मन में प्राण है, उसे हम कैसे त्याग सकते हैं? प्यारे देशवासियो, अपने मन में सोचो और विचार करो—

तुम तो हे प्रिय बन्धु, स्वर्ग-सी, सुखद सकल विभवों की आकर।
धरा शिरोमणि मातृभूमि में, धन्य हुए हो जीवन पाकर॥
तुम जिसका जल अन्न ग्रहण कर, बड़े हुए लेकर जिसकी रज।
तन रहते कैसे तज दोगे, उसको हे वीरों के वंशज॥

अतः मृत्यु का स्वागत करते हुए जब तक शरीर में एक भी श्वांस है, आत्मगौरव की रक्षा करते हुए अपने देश से प्रेम करो। उसकी सुरक्षा में यदि मरण भी हो तो उसका स्वागत करो, वही सच्चा देशप्रेम है—

सच्चा प्रेम वही है जिसकी, तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।

एतदर्थ देश के सर्वाङ्गीण विकास के लिए जीवन में त्याग की आवश्यकता है। इससे आत्मविकास के साथ मानवता भी विकसित और विलसित होती है, क्योंकि देशप्रेम पुण्यक्षेत्र कहा जाता है—

देशप्रेम वह पुण्यक्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित॥

वे मनुष्य धन्य हैं जो जननी, जन्मभूमि—भारत देश से सच्चा प्रेम करते हैं। ऐसे मनुष्यों का मस्तक सदैव ऊँचा रहता है, किसी के समक्ष झुकता नहीं। लोक में ऐसे ही देशभक्तों की पूजा होती है। अतः देशवासियों का परम कर्त्तव्य है कि वे व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर सच्चे अर्थ में पवित्र हृदय से देशप्रेम प्रदर्शित करें, जिससे समस्त देशों में भारत का गौरवपूर्ण स्थान बन सके और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ सके।

(१२) देशाटन

देशाटन शब्द दो शब्दों से बना है—देश+अटन। इसका अर्थ है—देश का भ्रमण। मनुष्य गतिशील प्राणी है, एक स्थान पर बैठे-बैठे मनुष्य का मन घबड़ा जाता है। अतः वह इधर-उधर भ्रमण करना पसन्द करता है और नवीन-नवीन स्थानों एवं दृश्यों को देखकर आनन्दित होता है। देशाटन संसार की सबसे बड़ी वस्तु है। यह ज्ञानवर्द्धन का परम श्रेष्ठ साधन है। एक स्थान पर बैठा हुआ मनुष्य न तो अपना कल्याण कर सकता है, न अपने परिवार का और न समाज का। हमारे आदि पुरुष देशाटन करके ज्ञानार्जन करते थे। आधुनिक पुरुषों में भी देशाटन करने वालों की कमी नहीं है। देशाटन में बड़ा ही आनन्द आता है। पुस्तकों में देश के विभिन्न स्थानों का वर्णन पढ़ने से भी आनन्द मिलता है, परन्तु देशाटन में अनिर्वचनीय आनन्द आता है, उसकी तुलना पुस्तक के आनन्द से नहीं की जा सकती। हिमालय को देखकर जो

आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, वह पुस्तक में हिमालय का वर्णन पढ़कर नहीं प्राप्त हो सकता। इसी प्रकार किसी नगर या किसी नदी आदि का वर्णन पढ़कर वह आनन्द नहीं मिल सकता, जो उनके साक्षात् दर्शन से प्राप्त होता है। वास्तव में देशाटन संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूति है। पाश्चात्य देशाटनकर्त्ताओं में डार्विनक, कोलम्बस तथा वास्कोडिगामा का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है, जिन्होंने अनेक नवीन अन्वेषण किया है। यदि वे देशाटन नहीं करते, तो अपने कार्य में सफल कैसे होते? हमारे भारतवर्षीय देशाटन-कर्ताओं की भी कमी नहीं है। गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी को कौन नहीं जानता? जिन्होंने घूम-घूम कर अपने-अपने बौद्धधर्म एवं जैनधर्म का प्रचार किया। यदि शंकराचार्य तथा रामानन्द देशाटन नहीं करते, केवल अपनी-अपनी कुटिया में बैठे रहते, तो वे देश के कोने-कोने में अपना मठ कैसे स्थापित करते और अपने ज्ञान का प्रचार कैसे करते? चैतन्य महाप्रभु ने घूम-घूम कर ही अपने मत का प्रचार किया। स्वामी दयानन्द ने देशाटन करके ही अपना नाम किया। उन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर पण्डितों से शास्त्रार्थ करके अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। ईसा मसीह ने भी देशाटन किया था, जिससे उनका संदेश संसार में प्रसरित हुआ। भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण का गुण-गान करने वाले गोस्वामी तुलसीदास तथा भक्त सूरदास दोनों ने भ्रमण किया तथा अपने-अपने इष्टदेव का प्रचार किया। वास्तव में देशाटन एक धर्म है, जो इस धर्म को, इस व्रत को अपनाता है, वह सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। उसके जीवन में विकास तो होता ही है, वह दूसरों के जीवन को भी विकसित करता है। अतः मनुष्य को कूपमण्डूक न बनकर सभी के लिए चाहे वह पुरुष हो, चाहे स्त्री इस देशाटन का व्रत अपनाना परम धर्म है। यदि किसी के माता-पिता या प्रेमी सुहृद् इस व्रत में बाधक बनते हैं, तो समझना चाहिए कि वे प्रह्लाद के माता-पिता के समान हैं। उनकी बातों पर ध्यान न देकर अपने इस देशाटन व्रत को पूर्ण करना चाहिए। इस देशाटन का समय तरुणाई ही है। अतः इसी समय में देशाटन करके जीवन का आनन्द लेना चाहिए, अन्यथा जवानी की अवस्था निकल जाने पर पछताना ही पड़ेगा। इसमाइल मरेठी ने ठीक ही कहा है—

सैर कर दुनिया के गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ?
जिन्दगानी गर रही तो, नौजवानी फिर कहाँ?

(१३) सत्संगति
अथवा
'सठ सुधरहिं सतसंगति पाई'

सत्संगति शब्द का अर्थ है—अच्छा साथ। दुर्जनों का साथ न करके सज्जनों का संग करना सत्संगति है, क्योंकि दुर्जनों का संग दुःखद होता है। दुष्टों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दूसरों का उत्थान देखकर जलते रहते हैं। दूसरों की निन्दा करने तथा सुनने में वे बड़ी ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। वे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सभी अवगुणों की खान हैं। कपट का व्यवहार करने में तथा कुटिलता दिखलाने में ये बड़े ही चतुर होते हैं। ये अकारण ही दूसरों से शत्रुता करते हैं। यदि कोई इनका हित करता है, तो वे उनके उपकार को भूलकर उनका अपकार ही करते हैं। ये दूसरों की सम्पत्ति तथा स्त्री पर दृष्टि लगाये रहते हैं। ये माता-पिता तथा गुरुजन किसी में श्रद्धा नहीं रखते, देवताओं को नहीं मानते, भगवान् की कथा से प्रेम नहीं करते तथा सभी से द्वेष-बुद्धि रखते हैं। अतः जो इनकी संगति में पड़ गया, वे उन्हें अपने मधुर वचनों से प्रभावित करके अपने समान बना देते हैं। अतः भूलकर भी उनका साथ नहीं करना चाहिए, क्योंकि कुसंगति से सदा दुःख ही दुःख मिलता है। अतः—

भूलेहु संगति करेउ न काऊ।
× × ×
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई।

सज्जनों का स्वभाव बड़ा ही सुखद होता है। ये दूसरों के दुःख को देखकर दुःखी तथा सुख को देखकर सुखी होते हैं। ये काम, क्रोध, लोभ तथा मोहादि विकारों से सदा दूर रहते हैं। ये सरलचित्त, उपकारी, धर्मात्मा, भगवद्भक्त, माता-पिता एवं गुरुजनों मे श्रद्धा तथा निष्ठा रखने वाले, अकारण दूसरों की भलाई करने वाले अनेक गुणों से युक्त होते हैं। जो इनकी संगति में पड़ गया वह सुखी हो गया। वेद तथा सरस्वती भी सज्जनों के गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं। भगवान् राम देवर्षि नारदजी से कहते हैं कि—

सुनु मुनि साधुन्ह के गुन जेते।
कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥

सत्संगति की महिमा अपार है। यह बुद्धि की जड़ता को दूर करती है,

सत्य वचन में प्रवृत्त करती है, मान बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न रखती है तथा चारों दिशाओं में यश को फैलाती है। इस प्रकार सत्संगति मनुष्य का क्या नहीं करती ?

'जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्' ॥

सत्संगति की महिमा सुनकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। इसकी महिमा छिपी नहीं है, क्योंकि महर्षि वाल्मीकि, देवर्षि नारद तथा ऋषि अगस्त्य सभी ने अपने-अपने मुख से अपने जन्म-कर्म की कथा कहकर इसकी महिमा का प्रतिपादन किया है। सत्संग के द्वारा ही इन्हें ज्ञान हुआ और ये सभी ऋषि-महर्षि के रूप में संसार में प्रतिष्ठित हुए—

सुनि अचरज करै जनि कोई।
सतसंगति महिमा नहिं गोई॥
वालमीक नारद घटजोनी।
निज निज मुखंन कही निज होनी॥
सो जानव सतसंग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

अतः मनुष्यों को सदैव सत्संग ही में मन लगाना चाहिए, कुसंग में नहीं, क्योंकि नरक का बास अच्छा है, कुसंगति में रहना अच्छा नहीं—

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देई विधाता॥

यदि कोई विधि-वश कुसंगति में पड़ गया हो और अपने को सम्भाल कर सुसंगति में आ जाय, सज्जन उन्हें वैसे ही सुधार देते हैं, जैसे पारसमणि लोहे को कञ्चन बना देता है—

सठ सुधरहिं सत्संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥

अतः जीवन-निर्माण, जीवन-विकास तथा जीवन के सुख के लिए सत्संगति परम आवश्यक है।

(१४) विजयादशमी

आश्विन शुक्लपक्ष दशमी को विजयादशमी कहते हैं। यह हिन्दुओं का बहुत बड़ा त्योहार है। कहा जाता है कि इसी दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ने लंकाधिपति रावण के ऊपर विजय प्राप्त की थी, जिसके उपलक्ष्य में विजयादशमी का त्योहार मनाया जाता है। इसकी कथा इस प्रकार है—जिस समय लंका में राम-रावण युद्ध हो रहा था, उस समय प्रथम दिन आश्विन कृष्णपक्ष अमावस्या की तिथि थी। भगवान् राम जब अपने अमोघ अस्त्रों के प्रयोग करने पर भी लंकेश रावण को पराजित न कर सके, तब उन्हें चिन्ता ग्रस्त करने लगी। वे सायंकाल युद्धविराम होने पर उदासमुख सुवेल पर्वत पर पहुँचे, उन्हें खिन्न देखकर मंत्रिप्रवर विभीषण ने कहा—'भगवन् ! आपका वदनाब्ज मलिन क्यों हैं ?' भगवान् राम ने कहा—'मंत्रिवर ! आज के प्रथम युद्ध में मेरे अमोघ अस्त्र व्यर्थ हो गये। मैंने देखा कि शक्ति लंकाधिपति रावण को अपने अंक में लेकर उसकी सहायता कर रही है, क्योंकि अपनी आराधना के द्वारा उसने उनको अपने अनुकूल कर लिया है।' भगवान् राम के वचनों को श्रवण करके मुख्यमंत्री भल्लपति जाम्बवन्त ने कहा—'भगवन् ! जब अधर्मरत रावण साधना से शक्ति को प्रसन्न कर सकता है, तो आप स्वयं धर्मरत भगवान् हैं; दृढ़ आराधना से परमशक्ति को प्रसन्न करके अनायास ही लंकेश पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जब तक आप शक्ति की आराधना में लीन रहेंगे, तब तक युद्ध का भार प्रमुख सेनापतियों पर रहेगा और वीरवर लक्ष्मण सेना के नायक रहेंगे।' मन्त्रिवर जाम्बवन्त के वचन सुनते ही भगवान् राम का कमलमुख प्रसन्न हो गया और उन्होंने पवनपुत्र हनुमान् से कहा—'हे मारुतनन्दन ! शक्ति की आराधना के लिए मुझे प्रातःकाल १०८ नीलकमल पुष्प चाहिए'। भगवान् राम ने आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को महाशक्ति दशभुजा दुर्गा का आवाहन करके उनकी आराधना प्रारम्भ कर दी। जब कठिन से कठिन साधना करते हुए आठ दिन व्यतीत हो गये, तब नवम दिन भगवती महाशक्ति ने राम की परीक्षा-हेतु एक नीलकमल चुरा लिया। जब भगवान् राम ने अपनी पूजा की पूर्णाहुति-हेतु अन्तिम एक नीलकमल पुष्प ग्रहण करने के लिए अपना हाथ बढ़ाया, तब इन्दीवर हस्तगत नहीं हुआ, जिससे वे पुनः चिन्तित हो गये और अपने भाग्य को धिक्कारने लगे। उसी समय उन्हें ध्यान आया कि बाल्यावस्था में मेरी माता मुझे 'कमलनयन' कहकर पुकारती थी।

अत: मेरे निकट अभी दो कमल शेष हैं। मैं उन्हीं में से एक कमलनयन महाशक्ति को अर्पित करके अपनी आराधना की पूर्णाहुति करूँगा। ऐसा निश्चय करके ज्यों ही भगवान् राम ने दायें हाथ से कमलनयन को बेंधने के लिए वाम हस्त में तीव्र सर ग्रहण किया, त्यों ही ब्रह्माण्ड काँपने लगा, जिससे शीघ्र ही महाशक्ति भगवती दुर्गा ने प्रत्यक्ष होकर उनका हाथ पकड़ लिया और उनकी दृढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें राक्षसेन्द्र रावण पर विजय का आशीर्वाद दिया—

'जय होगी जय होगी हे पुरुषोत्तम नवीन।'

भगवान् राम ने भगवती महाशक्ति की नव दिनों तक आराधना की, जो नवरात्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उसके पश्चात् दसवें दिन लंकेश पर विजय प्राप्त की, जो विजयादशमी के नाम से विख्यात हुई।

विजयादशमी के अवसर पर भारत में सर्वत्र बड़े नगरों तथा ग्रामों में गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित के आधार पर रामलीला होती है, जिसमें लंकेश रावण की कागज की प्रतिमा बना कर जलाई जाती है। इसका तात्पर्य है—अधर्म के ऊपर धर्म की विजय। भगवान् राम धर्म के प्रतीक हैं और रावण अधर्म का प्रतीक है। इस अवसर पर बहुत अच्छा मेला भी लगता है। वाराणसी के निकट गंगा पार रामनगर की रामलीला विशेष प्रसिद्ध है, क्योंकि यहाँ भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी से आश्विन शुक्ल पूर्णिमा तक भगवान् विष्णु के क्षीरसागर की झाँकी से प्रारम्भ होकर भगवान् राम के अवतार से लेकर लंकेश रावण-वध एवं अयोध्या के दिव्य सिंहासन पर भगवान् राम के राज्यतिलक तक समस्त लीलाएँ मास पर्यन्त भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती हैं——

राम राज्य बैठे त्रय लोका।
हरषित भये गए सब सोका॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहि काहुहि व्यापा॥

रामलीला का एक मात्र यही उद्देश्य है कि मनुष्य को भगवान् राम के समान ही आचरण करना चाहिए, रावण के समान नहीं—

'रामवत् आचरितव्यं न रावणवत्।'

विजयादशमी के अवसर पर आबाल वृद्ध नर-नारी सभी में उल्लास

रहता है। बड़े बालकों को रामलीला तथा मेला हेतु रुपये-पैसे, मिठाइयाँ आदि देते हैं तथा स्वयं मिठाई का आनन्द लेते हैं।

विजयादशमी यात्रा दिन भी है। इसी दिन अपने कान या सिर पर नवरात्र का अंकुरित जौ रखकर लोग घर से यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं। इस दिन नीलकंठ का दर्शन शुभ माना जाता है। यह प्रत्येक कार्य के लिए शुभ मुहूर्त है। इस प्रकार विजयादशमी का जितना भी महत्त्व वर्णन किया जाय, वह स्वल्प है।

उत्तरमध्यमा : प्रथम वर्ष
अनिवार्य हिन्दी : तृतीय पत्र
द्वितीय भाग
लघु प्रश्न तथा उत्तर

(१) प्रश्न : गद्य साहित्य के उद्भव तथा विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : गद्य साहित्य का उद्भव तथा विकास—रीतिकाल के अवसान के पश्चात् संवत् १९०० विक्रमी से गद्य साहित्य का प्रारम्भ हुआ। इस गद्य साहित्य का प्रथम सूत्रपात लल्लू लाल, सदल मिश्र, मुंशी सदासुख लाल तथा इंशा अल्ला खाँ की लेखनी द्वारा हुआ, जिसे हम गद्य साहित्य की शैशवावस्था कह सकते हैं। बाद मे गद्य साहित्य शनैः-शनैः अपनी शैशवावस्था को पार कर राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' तथा लक्ष्मण सिंह के हाथों में पड़ा। हिन्दी साहित्य की प्रगति के साथ-साथ उसका भविष्य उज्ज्वल दृष्टिगत होने लगा और उसके कर्णधार बने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

हिन्दी साहित्य की प्रगति और विकास दोनो साथ-साथ हुआ। इस प्रकार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हाथों में पड़कर हिन्दी गद्य साहित्य का भविष्य चमक उठा। हिन्दी का गद्य साहित्य नाटक, निबन्ध, कहानी, उपन्यास तथा आलोचना—अनेक विधाओं में विकसित होने लगा तथा वर्तमान समय में भी विकसित हो रहा है।

(२) प्रश्न : निबन्ध के उद्‌भव तथा विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : निबन्ध का उद्‌भव तथा विकास—गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं में निबन्ध एक प्रमुख विधा है। इसके प्रवर्तक जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। निबन्ध के विकास को हृदयंगम करने के लिए सुविधा की दृष्टि से हम उसे ४ युगों में विभक्त कर सकते हैं—

१. भारतेन्दु युग, २. द्विवेदी युग, ३. शुक्ल युग, ४. शुक्लोत्तर युग या वर्तमान युग।

(३) प्रश्न : भारतेन्दु युग के निबन्धकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर : भारतेन्दु युग के निबन्धकार—इस युग का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से होता है। भारतेन्दुजी स्वयं निबन्धकार थे। अतः इन्होंने एक मण्डल स्थापित

किया, जो 'भारतेन्दु मण्डल' के नाम से विख्यात हुआ, जिसमें इनके समकालीन अनेक लेखक सम्मिलित थे। उन लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, बालमुकुन्द गुप्त तथा राधाचरण गोस्वामी मुख्य थे।

भारतेन्दुजी ने स्वयं निबन्ध लिखकर इन लेखकों को भी भिन्न-भिन्न विषयों पर निबन्ध लिखने के लिए प्रेरित किया।

भारतेन्दुकालीन लेखकों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अनेक निबन्ध लिखे। इस युग में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा इनके मण्डल के लेखकों ने पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं, जिनमें उनके निबन्ध प्रकाशित होते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिका का नाम 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', बालकृष्ण भट्ट की पत्रिका का नाम 'प्रदीप' तथा प्रतापनारायण मिश्र की पत्रिका का नाम 'ब्राह्मण' था।

भारतेन्दु युग निबन्ध की शैशवावस्था थी। अतः उसमें भाषा की सरसता नहीं थी, बल्कि ग्रामीणता एवं व्याकरण की अशुद्धियाँ अधिक थीं।

(४) प्रश्न : द्विवेदी युग के निबन्धकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर : द्विवेदी युग के निबन्धकार—भारतेन्दु युग के पश्चात् द्विवेदी युग प्रारम्भ होता है। इसके प्रवर्तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी थे। इन्होंने विद्वान् लेखकों की एक मण्डली स्थापित की, जो 'द्विवेदी मण्डल' के नाम से विख्यात हुआ। इस मण्डल में आने वाले लेखकों में रायकृष्ण दास, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', सरदार पूर्णसिंह, माधवप्रसाद मिश्र, पद्मसिंह शर्मा तथा श्यामसुन्दर दास मुख्य थे। द्विवेदीजी ने अनेक विषयों पर निबन्ध लिखकर अपने मण्डल के लेखकों को भी सुरुचिपूर्ण निबन्ध लिखने के लिए प्रेरणा प्रदान की। इन्होंने 'सरस्वती' नामक पत्रिका का भी सम्पादन किया, जिसमें वे स्वयं अपने तथा लेखकों के निबन्ध प्रकाशित करते थे। द्विवेदी युग में भारतेन्दु युग की अनस्थिर शैली स्थिर हुई और भाषा व्याकरण के नियमों से आबद्ध होकर परिष्कृत हो गई।

(५) प्रश्न : शुक्ल युग के निबन्धकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर : शुक्ल युग के निबन्धकार—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से शुक्ल युग का प्रारम्भ होता है। यद्यपि ये द्विवेदी युग के ही निबन्धकार हैं, परन्तु इनके निबन्धों की विशिष्टता होने के कारण यह युग शुक्लयुग के नाम से ही अभिहित हुआ। इस युग में विषयों के वैविध्य के साथ-साथ निबन्ध की भाषा में भी प्रौढ़ता तथा गम्भीरता आई। आचार्य शुक्लजी से प्रेरित इस युग के प्रौढ़ निबन्धकारों में बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि तथा डॉ. रघुवीर सिंह मुख्य हैं।

(६) प्रश्न : शुक्लोत्तर युग या वर्तमान युग के निबन्धकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर : शुक्लोत्तर युग या वर्तमान युग के निबन्धकार—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद शुक्लोत्तर युग या वर्तमान युग प्रारम्भ हुआ। इस युग में व्यक्तिनिष्ठ तथा ललित निबन्धों की विशेष रचना हुई और हो रही है। इस प्रकार के निबन्धकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी मुख्य थे। इस वर्तमान युग में इस परम्परा को चलाने वाले प्रौढ़ लेखकों में डॉ. विद्यानिवास मिश्र का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है, जो अपने ललित निबन्धों के कारण विशेष प्रसिद्ध हैं।

(७) प्रश्न : एकांकी नाटकों के उद्भव तथा विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : एकांकी नाटकों का उद्भव तथा विकास—गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं में एकांकी नाटक भी एक प्रमुख विधा है। एकांकी शब्द एक + अंक शब्द के योग से बना है। एकांकी का तात्पर्य छोटे नाटक से है, जिसमें एक ही अंक हो। इसकी समस्त घटनाएँ एक ही अंक में पूर्ण होती हैं। एकांकी के तत्त्व प्रायः वही होते हैं जो नाटक के होते हैं—

कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्रचित्रण, देशकाल, भाषा-शैली तथा उद्देश्य। इन तत्त्वों के अतिरिक्त रंगमञ्च की उपयोगिता—इसका विशेष तत्त्व है।

हिन्दी में एकांकी नाटकों का श्रीगणेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। इसके बाद जयशंकर प्रसाद, डॉ. रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सेठ गोविन्ददास, जगदीशचन्द्र माथुर तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र इत्यादि लेखकों ने अनेक एकांकी नाटकों की सृष्टि की। इस प्रकार एकांकी नाटक पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है।

❖

तृतीय भाग

अतिलघु प्रश्न तथा उत्तर

(१) प्रश्न : 'शिरीष के फूल' नामक निबन्ध किस निबन्धलेखक की रचना है ?

उत्तर : 'शिरीष के फूल' नामक निबन्ध के रचयिता श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं।

(२) प्रश्न : 'गरुड़ध्वंज' नामक निबन्ध किस निबन्धलेखक की रचना है ?

उत्तर : 'गरुड़ध्वज' नामक निबन्ध के रचयिता डॉ. भगवतशरण उपाध्याय हैं।

(३) प्रश्न : 'चित्रकूट की छाया में' नामक निबन्ध किस लेखक की कृति है ?

उत्तर : 'चित्रकूट की छाया में' नामक निबन्ध के लेखक श्री राहुल सांकृत्यायन हैं।

(४) प्रश्न : 'चित्राङ्कन' नामक निबन्ध के रचयिता का नाम लिखिए।

उत्तर : 'चित्राङ्कन' नामक निबन्ध के रचयिता श्री वियोगी हरि हैं।

(५) प्रश्न : 'आजाद की माताजी' किस लेखक की कृति है।

उत्तर : 'आजाद की माताजी' नामक निबन्ध के लेखक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी हैं।

(६) प्रश्न : 'बाघ से भिड़न्त' नामक निबन्ध के रचयिता का नाम लिखिए।

उत्तर : 'बाघ से भिड़न्त' नामंक निबन्ध के रचयिता श्रीराम शर्मा हैं।

(७) प्रश्न : 'क्या सूझी एलेक्शन की' नामक निबन्ध किसकी कृति है ?

उत्तर : 'क्या सूझी एलेक्शन की' नामक निबन्ध के लेखक श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ हैं।

(८) प्रश्न : 'स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न' निबन्ध के लेखक का नाम लिखिए।

उत्तर : 'स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न' निबन्ध की लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा हैं।

(९) प्रश्न : 'सरजू भैया' निबन्ध किस लेखक की कृति है ?
उत्तर : 'सरजू भैया' निबन्ध श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की कृति हैं।
(१०) प्रश्न : 'बन्दी पिता का पत्र' निबन्ध के लेखक का नाम लिखिए।
उत्तर : 'बन्दी पिता का पत्र' निबन्ध के लेखक का नाम श्री कमलापति त्रिपाठी हैं।

(११) प्रश्न : 'पहला रिपोर्टर' निबन्ध किस लेखक की कृति है ?
उत्तर : 'पहला रिपोर्टर' निबन्ध श्री अज्ञेयजी की कृति हैं।
(१२) प्रश्न : 'तूफान के विजेता' निबन्ध के लेखक का नाम लिखिए।
उत्तर : 'तूफान के विजेता' निबन्ध के लेखक श्री रांगेय राघव हैं।
(१३) प्रश्न : 'काठमाण्डू दर्शन' नामक निबन्ध के रचयिता का नाम लिखिए।

उत्तर : 'काठमाण्डू दर्शन' नामक निबन्ध के रचयिता डॉ. नगेन्द्र हैं।
(१४) प्रश्न : 'क्यों रो रहे हो ?' नामक निबन्ध किस लेखक की कृति है ?

उत्तर : 'क्यों रो रहे हो ?' नामक निबन्ध श्री कन्हैया लाल मिश्र की कृति है।
(१५) प्रश्न : 'जानकीमंगल' एकांकी के रचयिता का नाम लिखिए।
उत्तर : 'जानकीमंगल' एकांकी के रचयिता श्री शीतलाप्रसाद त्रिपाठी हैं।
(१६) प्रश्न : 'सत्य हरिश्चन्द्र' एकांकी के रचयिता का नाम लिखिए।
उत्तर : 'सत्य हरिश्चन्द्र' एकांकी के रचयिता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।
(१७) प्रश्न : 'यम का न्याय' एकांकी के रचयिता का नाम लिखिए।
उत्तर : 'यम का न्याय' एकांकी के रचयिता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।
(१८) प्रश्न : 'अँधेरी नगरी' एकांकी के रचयिता का नाम लिखिए।
उत्तर : 'अँधेरी नगरी' एकांकी के रचयिता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।
(१९) प्रश्न : 'चन्द्रावली' एकांकी के रचयिता का नाम लिखिए।
उत्तर : 'चन्द्रावली' एकांकी के रचयिता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।
(२०) प्रश्न : 'सतीप्रताप' एकांकी के रचयिता का नाम लिखिए।
उत्तर : 'सतीप्रताप' एकांकी के रचयिता का नाम श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है।
(२१) प्रश्न : निम्नांकित लेखकों में 'शिरीष के फूल' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री वियोगी हरि, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी।

उत्तर : 'शिरीष के फूल' नामक निबंन्ध डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की कृति है।

(२२) प्रश्न : निम्नांकित लेखकों में 'गरुड़ध्वज' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री वियोगी हरि।

उत्तर : 'गरुड़ध्वज' नामक निबन्ध डॉ. भगवतशरण उपाध्याय की कृति है।

(२३) प्रश्न : निम्नांकित लेखकों में 'चित्रकूट की छाया में' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री वियोगी हरि, राहुल सांकृत्यायन।

उत्तर : 'चित्रकूट की छाया में' नामक निबन्ध श्री राहुल सांकृत्यायन की कृति है।

(२४) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'चित्राङ्कन' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

श्री वियोगी हरि, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

उत्तर : 'चित्राङ्कन' नामक निबन्ध श्री वियोगी हरि की कृति है।

(२५) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'आजाद की माताजी' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

बनारसीदास चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी।

उत्तर : 'आजाद की माताजी' नामक निबन्ध श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की कृति है।

(२६) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'बाघ से भिड़न्त' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

श्रीराम शर्मा, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय।

उत्तर : 'बाघ से भिड़न्त' नामक निबन्ध श्रीराम शर्मा की कृति है।

(२७) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'क्या सूझी एलेक्शन की' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

श्रीराम शर्मा, श्रीकृष्णदेव प्रसाद गौड़, बनारसीदास चतुर्वेदी।

उत्तर : 'क्या सूझी एलेक्शन की' नामक निबन्ध श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ की कृति है।

(२८) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

श्रीमती महादेवी वर्मा, श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी।

उत्तर : 'स्त्री के अर्थ स्वातन्त्र्य का प्रश्न' नामक निबन्ध श्रीमती महादेवी वर्मा की कृति है।

(२९) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'सरजू भैया' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

रामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीकृष्णदेव प्रसाद गौड़, बनारसीदास चतुर्वेदी।

उत्तर : 'सरजू भैया' नामक निवन्ध श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की कृति है।

(३०) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'बन्दी पिता का पत्र' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, कमलापति त्रिपाठी, बनारसीदास चतुर्वेदी।

उत्तर : 'वन्दी पिता का पत्र' नामक निबन्ध श्री कमलापति त्रिपाठी की कृति है।

(३१) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'पहला रिपोर्टर' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय।

उत्तर : 'पहला रिपोर्टर' नामक निबन्ध श्री अज्ञेय की कृति है।

(३२) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'तूफान के विजेता' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

रांगेय राघव, अज्ञेय, बनारसीदास चतुर्वेदी।

उत्तर : 'तूफान के विजेता' नामक निवन्ध श्री रांगेय राघव की कृति है।

(३३) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'काठमाण्डू दर्शन' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

श्रीकृष्णदेव प्रसाद, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र।

उत्तर : 'काठमाण्डू दर्शन' नामक निवन्ध डॉ. नगेन्द्र की कृति है।

(३४) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'क्यों रो रहे हो ?' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

श्री कन्हैयालाल मिश्र, श्री कृष्णादेव प्रसाद, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी।

उत्तर : 'क्यों रो रहे हो ?' नामक निबन्ध श्री कन्हैयालाल मिश्र की कृति है।

(३५) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'जानकीमंगल' नामक एकांकी किस एकांकीकार की कृति है—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद।

उत्तर : 'जानकीमंगल' नामक एकांकी के रचयिता श्री शीतलाप्रसाद त्रिपाठी हैं।

(३६) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'यम का न्याय' नामक एकांकी किस एकांकीकार की कृति है—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, शीतलाप्रसाद त्रिपाठी।

उत्तर : 'यम का न्याय' नामक एकांकी के रचयिता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।

(३७) प्रश्न : निम्नलिखित लेखकों में 'सतीप्रताप' नामक एकांकी किस एकांकीकार की कृति है—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद।

उत्तर : 'सतीप्रताप' नामक एकांकी के रचयिता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।

88287723180

मनोरमा-रत्नविमर्शः । केशवदेव तिवा... । (१-२ भाग)
महाभाष्यनवाह्निकीयालोचनम् । (नवाह्निक-प्रश्नोत्तरी) विजयमित्र शास्त्री
मालविकाग्निमित्र-रहस्यम् । डॉ. ब...गोविन्द झा
मीमांसापरिभाषा सोपानम् । डॉ. शि...प्रसाद द्विवेदी
मुक्तावली-प्रकाश । (न्यायसिद्ध...मुक्तावली-प्रश्नो.) राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
मुद्राराक्षस-विवेकः । लोकमणि दाहा...न
मृच्छकटिक-सोपानम् । डॉ. नरेश झ.
मेघदूत-तत्वालोकः । अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री
रघुवंश-रहस्यम् । रामप्रसाद त्रिपाठी । १-३ सर्ग, ६-७ सर्ग, १३-१४ सर्ग
रत्नावलीनाटिका सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
रसगङ्गाधर-सारः । डॉ. नरेश झा
लघुशब्देन्दुशेखर-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
लघुसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । आचार्य विजयमित्र शास्त्री
वक्रोक्तिजीवित-दीपिका । डॉ. नरेश झा
वाक्यपदीय-प्रकाशिका । (ब्रह्मकाण्ड) । डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा
वासवदत्ता-रहस्यम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
वेणीसंहार-रहस्यम् । पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय
वेदान्तपरिभाषा-सौरभम् । आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
वेदान्तसार-प्रदीपः । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
वैदिकसाहित्येतिहास-सोपानम् । डॉं. शिवप्रसाद द्विवेदी
वैयाकरणभूषणसार-दीपिका । श्री रामकिशोर त्रिपाठी
वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । शास्त्री एवं त्रिपाठी । (१-४ खण्ड) सम्पूर्ण
वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा-रहस्यम् । स्वामी रामेश्वर पुरी
वृत्तरत्नाकर-दीपिका । पं. वेदव्यास शुक्ल
व्यक्तिविवेकप्रश्नोत्तरीः । (१-२ विमर्श) कोठ्यारी एवं द्विवेदी
व्याकरणशास्त्रस्येतिहासः । डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
शाकुन्तल-रहस्यम् । त्रिलोकीनाथ द्विवेदी
शिवराजविजय-दीपिका । पं. वेदव्यास शुक्ल । प्रथम विराम
शिशुपालवध-रहस्यम् । श्री अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री । १-४ सर्ग
संस्कृतसाहित्येतिहास-कुञ्जिका । आचार्य परमानन्द शास्त्री
सांख्यकारिकादर्शः । राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
साहित्यदर्पणालोकः । रामजीलाल शर्मा । (१-६ परि.; ७-१० परि.) सम्पूर्ण
साहित्यशास्त्रीयोनिबन्धेतिहासः । वेदव्यास शुक्ल ।
सिन्धुवादवृत्त-रहस्यम् । डॉ कृष्णदेव प्रसाद
स्वरवैदिकी-प्रकाशः । डॉ. बालगोविन्द झा

संस्कृत-विषयक सभं ओं हेतु उपयोगी पुस्तकें

संस्ृ णम्

व्याकरण-साहित्य-ज्योतिष-दर्श ास्त्र-शिक्षणसहितम्

डॉ. उदय शंक झा

विषयवस्तु—• संस्कृत भाषाया: महत्त्वम् • संस्कृतशिक्षणस्योद्देश्यानि • पाठ्यक्रमे-संस्कृतस्य स्थानम् • भाषाशिक्षणस्य कौशल-सामान्यसिद्धान्ता: शिक्षण-सूत्राणि च • संस्कृतशिक्षणविधि:-पाठ्ययोजना • संस्कृतशिक्षणे दृश्यश्रव्योपकरणानि • विभिन्न-संस्थानानां प्रयोगात्मक-प्रयास: • प्राचीनार्वाचीन-मूल्यांकन-प्रविधय: • व्याकरणशिक्षण-स्य महत्त्वम् • व्याकरणशिक्षणे प्रणाल्य: युक्तयश्च • व्याकरण-शिक्षणविधय: पाठ्य-योजना • साहित्य-शास्त्रस्य परिचय: • साहित्यशिक्षण-विधय:-पाठ्ययोजना • ज्योतिष-शास्त्र-ज्योतिषशिक्षणस्य विधय: • कुण्डली-निर्माणम् • चित्राणां प्रतिकृती-नामन्येषां च श्रव्यदृश्योपकरणानामुपयोग: • दर्शन-शास्त्रशिक्षणम् • दर्शनशिक्षण-विधय: • निरीक्षणा-धीन: स्वाध्याय: • प्रशिक्षणस्य स्थानान्तरणाम् • दर्शन-ज्ञानस्य अन्यविद्यासु उपयोग:

संस्कृत शास्त्र-मञ्जूषा

डॉ. उदय शंकर झा

विषयवस्तु—• वैदिकसाहित्यअध्ययनम् • व्याकरणशास्त्रअध्ययनम् • छन्द(साहित्य-शास्त्र)अध्ययनम् • ज्योतिषशास्त्रअध्ययनम् • शिक्षाशास्त्रअध्ययनम् • शिक्षा-निरुक्त-कल्प-अध्ययनम् • भाषाविज्ञानअध्ययनम् • पुराणेतिहास-अध्ययनम् • ध शास्त्र-कर्मकाण्डअध्ययनम् • विषयानुसारेण वस्तुनिष्ठप्रश्नोत्तराणि

चिरन्तनी

पूर्वशिक्षाशास्त्री मार्गोपदेशिका

डॉ. रमाकान्तमिश्र:

• राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली • राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति • श्री लाल-बहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली • जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर एवं अन्य सभी विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित पूर्वशिक्षाशास्त्रीपरीक्षा के पाठ्यक्रमानुसार

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन • वाराणसी

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस • नई दिल्ली